प्रायश्चित्त

और

उन्मुक्तिका बन्धन

—पदुमलाल बख्शी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका २० वाँ ग्रंथ

प्रायश्चित्त

और

उन्मुक्तिका बन्धन

बेल्जियमके सुप्रसिद्ध कवि मारिस मेटरलिंकके
'सिस्टर बीट्रिस' और 'दी यूज़लेस डेलिवरेन्स'
नामक नाटकोंके मर्मानुवाद

अनुवादकर्ता—
सरस्वती-सम्पादक
श्रीयुत बाबू पदुमलाल बख्शी, बी० ए०

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

तीसरी आवृत्ति } श्रावण, १९८७ वि०। जुलाई, सन् १९३० ई०। { मूल्य आठ आने

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Hindi Grantha
Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Printed by D. G. Savarkar, Shraddhanand
Mudranalaya, Bombay No 4.

समर्पण—

पूजनीय पिताजीके चरण-कमलोंमें —

—पदुमलाल ।

पाप-तापमें जलकर भी जो होता नहीं निराश,
नहीं छोड़ सकता जो अपना प्रेमपूर्ण विश्वास।
रह सकता क्या कभी जगतमें उसका पाप कलंक,
कैसा भी हो उसको देवी देतीं अपना अंक।

भूमिका

बेल्जियमके प्रसिद्ध कवि मारिस मेटरलिंकके ग्रन्थोंकी योरपमें बड़ी प्रशंसा है। मैं आज उनके ही एक नाटक—सिस्टर बीट्रिस—का मर्मानुवाद लेकर हिन्दी-पाठकोंकी सेवामें उपस्थित हुआ हूं।

मेटरलिंकके नाटकोंका सम्बन्ध आत्मासे है, शरीरसे नहीं। उनमें संसारका—बाह्य प्रकृतिका—चित्र अंकित नहीं किया गया है। संसारकी प्रतिच्छाया आत्मापर पड़ती है उसका ही चित्रण किया गया है। सच तो यह है कि मेटरलिंक दार्शनिकसे नाटककार हुए हैं, अतएव उनके ग्रन्थोंमें 'आत्मिकता' का ही भाव है। मैं अपने पाठकोंसे प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे इस क्षुद्र ग्रन्थमें केवल कथाभागपर ध्यान दें, भाषापर नहीं। मेटरलिंकके लेखोंमें जो माधुर्य है वह इसमें थोड़ा भी नहीं है। यह मूल ग्रन्थका अत्यन्त विकृत रूप है।

मैं श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीका कृतज्ञ हूं। उनकी ही कृपासे मैं आज हिन्दी भाषाकी कुछ सेवा कर सका हूं।

प्रयाग,
२०-८-१९१६

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिं निगच्छति
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

निवेदन

कुछ वर्ष पहले मैंने मेटरलिंकके एक नाटक—सिस्टर वीट्रिस—का यह मर्मानुवाद किया था। अब उसीके साथ उनके एक दूसरे छोटे नाटक—दी यूज़लेस डेलिवरेन्स—का भी छायानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। योरपमें मारिस मेटरलिंककी रचनाओंका बड़ा आदर है। अनेक भाषाओंमें उनके ग्रन्थोंके अनुवाद हो चुके हैं। उन्हें साहित्यमें नोबल-प्राइज़ भी मिल चुका है। उनकी रचनाओंसे हिन्दीके पाठकोंको परिचित करानेके लिए मैंने इन नाटकोंको लिखा है। मूल नाटकोंसे यदि इनकी तुलना की जाय तो दोनोंमें केवल कथा-मात्रकी समानता मिलेगी। मैंने अपनी ओरसे इनमें यथेष्ट परिवर्तन कर दिया है। ऐसे परिवर्तित—विकृत अनुवादोंसे विदेशी लेखकोंकी रचना-कुशलता व्यक्त नहीं हो सकती। अतएव इन नाटकोंसे मेटरलिंककी रचना-शक्तिकी परीक्षा तो नहीं हो सकती; पर मेरा विश्वास है कि मूल नाटकोंके विकृत रूप होने पर भी इनमें उनके भावोंकी रक्षा की गई है, देश और कालको परिवर्तित कर देनेपर भी उनका भाव नष्ट नहीं हुआ है।

प्राचीन नाटकों और आधुनिक नाटकोंमें बड़ा भेद हो गया है। प्राचीन नाटकोंमें जो विशेषता थी वह आधुनिक नाटकोंमें नहीं पाई जाती है। उनकी पहली विशेषता थी घटना-वैचित्र्य। आधुनिक नाटकोंमें बाह्य घटनाओंका अभाव होने लगा है। भिन्न भिन्न भावोंका विश्लेषण करनेकी ओर आधुनिक नाटकोंकी अधिक प्रवृत्ति है। रोमियो और जूलियटकी प्रेमकथाके लिए उसीके उपयुक्त एक सुन्दर बाह्य जगत्की भी सृष्टि होनी चाहिए। चन्द्रलोककी रश्मि-छटामें ही ऐसे प्रेमका माधुर्य व्यक्त हो सकता है। इसीसे पहले कविको एक 'चन्द्रलोक' की सृष्टि करनी पड़ती है और फिर भय, आशङ्का, वेदना और निराशाकी दारुण घटनाओंकी रचना करनी पड़ती है। तब उस अपूर्व प्रेमका प्रदर्शन होता है। हैमलेटकी विरक्ति, किंग लीयरकी वेदना, मैकबेथकी वासना किसी अपरिचित, अज्ञात, अपूर्व लोकके ही उपयुक्त है। साधारण मनुष्योंके जगत्में इनकी महत्ता प्रकट ही नहीं हो सकती। आधुनिक नाटकोंमें ऐसा कोई भी

'विराट' भाव नहीं है, न वह पराक्रम है, न वह शौर्य, न वह त्याग और न वह वेदना। आधुनिक नाटककार चन्द्रलोकके सौन्दर्यको छोड़कर एक नये ही सौन्दर्यकी खोजमें हैं जिसका अस्तित्व भाव-जगत्‌में है। इब्सन्‌ने अन्तर्जगत्‌की समीक्षामें कितन ही उद्वेग-जनक दृश्य दिखलाये हैं। अन्य नाटककारोंने कितनी ही समस्यायें उपस्थित कर दी हैं। उनकी रचनाओंमें हमें विश्वके सन्तापका खूब अनुभव हो जाता है, पर यहीं उसका अन्त नहीं हो गया है। मनुष्योंके अन्धकारमय जीवनमें भी एक कनक-रेखा है। कितनी ही ग्राम्य कथाओं और गीतोंमें उसीकी सरल और स्निग्ध ज्योति झलक रही है। रंगभूमिमें भी उसी ज्योतिका प्रदर्शन होनेपर शान्ति, सुख और सौन्दर्यके भी रूप प्रकट होंगे। अब कितने ही नाटककार उसी सौन्दर्यकी अभिव्यक्तिकी चेष्टामें लगे हैं। 'प्रायश्चित्त' और 'उन्मुक्तिका बन्धन' ऐसे ही नाटक हैं। इनमें न तो विस्मय, आतङ्क और वेदनाके दृश्य हैं और न कोई उद्वेग-जनक ही दृश्य है। ऐसी कथायें गाँव गाँवमें कही जाती हैं। उनमें प्रेम और विश्वासकी सरलता और दृढ़ता है और इन्हींसे मनुष्योंके भावजगत्‌में सदैव एक अपूर्व सौन्दर्य सृष्टि होती रहती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह सौन्दर्य सदैव श्रेयस्कर ही सिद्ध होगा।

—पदुमलाल पन्नालाल बख्शी

प्रायश्चित्त

[भागीरथीके तटपर अन्नपूर्णाका विशाल मंदिर स्थित है। मंदिरके दक्षिण भागमें परिचारिकाओंका निवास-स्थान है; वामभागमें अतिथि-शाला है। सम्मुख एक विस्तृत उद्यान है। रात्रिका समय है। देवीके भवनमें प्रदीप जल रहा है और कमला स्थिर-दृष्टिसे भगवतीकी ओर देख रही है। मंदिरमें सर्वत्र शान्ति है।]

कमला—

दया करो, देवि, मुझपर दया करो। मुझे जान पड़ता है मैं कुपथमें जा रही हूँ। पर मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ। वह आज आ रहा है। उसने कह दिया है, वह आज अवश्य आवेगा। मैं उसे क्या कहूँगी, कुछ नहीं कह सकती हूँ। मैं नहीं जानती हूँ, वह क्या चाहता है। वह सदा मेरी ओर सतृष्ण नेत्रोंसे, अतृप्त दृष्टिसे, देखता है। और मैं—मुझे भी न जाने क्या हो जाता है—उसकी ओर स्थिर होकर नहीं देख सकती। क्षणभरके लिए मैं तुम्हें भी भूल जाती हूँ। कुछ दिन पहले मैं कुछ नहीं जानती थी। मैं अब भी कुछ नहीं जानती हूँ।

तो भी मेरा हृदय कभी कभी चंचल हो जाता है। किसी अज्ञात वेदनासे सदा पीड़ित रहता है। मैं किसीसे कुछ पूछ नहीं सकती हूँ, किसीसे कुछ कह नहीं सकती हूँ। अपने हृदयकी वेदना मैं केवल तुमसे प्रकट करती हूँ। आजतक मैंने किसी दूसरेसे कुछ नहीं कहा है। यह व्यथा मैं चुपचाप सह लेती हूँ। इसे दूर करनेकी मुझे लालसा नहीं है। वेदनाका भार हृदयमें रखकर मुझे सुख होता है। यह कैसा सुख है, यह मेरी कैसी वेदना है!

वह कहता है, यह प्रेम है। मैं सुनती हूँ, यह पाप है, अनुचित वासना है। पर क्या यह सचमुच अनुचित है? इसमें संदेह नहीं है, मैं उसे सदा देखना चाहती हूँ। इससे मुझे लज्जा होती है, संकोच होता है। पर मैं उसे देखना अवश्य चाहती हूँ। यह क्या प्रेम हो सकता है? सुनती हूँ, विवाहके बाद पुरुषसे प्रेम करना अनुचित नहीं है। वह कहता था, मंदिरसे जाते ही वह मुझसे विवाह कर लेगा। उसका गुरु आकर हम लोगोंको सदाके लिए, जन्म-जन्मान्तरके लिए, विवाहके दृढ सूत्रमें ग्रथित कर देगा। किन्तु मैंने यह भी सुना है, पापमें बड़ी आकर्षणशक्ति है; विषय-वासना प्रबल होती है। उसके जालमें पड़कर स्त्रियोंकी धर्ममें मति नहीं रहती है। पुरुष स्त्रियोंको कुपथमें ले जानेके लिए सदा प्रयत्न करते हैं। परन्तु तुम उसे जानती हो, वह ऐसा नीच नहीं है। जब मैं छोटी थी तब मैं उसके साथ उद्यानमें खेलनेके लिए जाती थी। वह

फूल तोड़कर लाता था और मैं तितली पकड़नेकी चेष्टा करती थी। जब संध्या हो जाती थी, सूर्य अस्त होने लगता था, प्रकृति किसीकी चिन्तामें निमग्न होकर गंभीर हो जाती थी, वसंत-कालका पवन नव-विकसित पुष्पोंका परिमल लेकर किसीकी उपासनाके लिए पृथ्वीसे आकाश तक भ्रमण करता था, पक्षियोंका समूह अपने मधुर, अस्पष्ट स्वरसे किसीकी स्तुति-कथा कहता था, और जब पृथ्वी श्री-हीन होकर लज्जासे अंधकारमें अपना अंग छिपा लेती थी, हम लोग किसी वृक्षके नीचे बैठकर फूलोंकी माला गूँथते थे। उस समय आशंका नहीं थी, संकोच नहीं था, लज्जा नहीं थी, भय नहीं था, चिन्ता नहीं थी। तुम्हारे आश्रयमें आकर मैं उसे भूल गई थी। तो भी कभी कभी प्रार्थनाके समय, अथवा जब मैं किसी कारणसे उदास हो जाती थी तब, बाल्यकालका स्मरण आजानेसे, उसकी सुधि आती थी। देवि, मैं कह सकती हूँ, वह नीच नहीं है। उसके नेत्र शिशुके नेत्रोंके समान हैं, वैसी ही कोमलता है, वैसा ही माधुर्य है। यह क्या कभी नीचोंमें हो सकता है? कल वह आया था, तुम्हें उसने प्रणाम किया था। तुमने तो उसे देखा है, वह क्या नीच है?

तो भी मैं तुम्हें छोड़कर, तुम्हारी गोदसे अलग होकर, रहना नहीं चाहती। मैं अभागिनी हूँ। वह मुझे तुम्हारे आश्रयसे दूर करना चाहता है। वह कहता था—मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी, सब कह देती हूँ—यदि मैं उसके साथ नहीं

जाऊँगी तो वह आत्महत्या कर लेगा, मेरे लिए—मुझ अभागिनीके लिए—वह अपना प्राण त्याग देगा। देवि, मैंने सुना है ऐसा प्रायः होता है। यदि ऐसा है तो मैं क्या करूँगी? मैं बड़ी विपदमें हूँ। मैं कुछ नहीं समझ सकती हूँ। जननि, मुझपर दया करो। तुम कह दो, यदि केवल एक बार कह दो, मैं नहीं जाऊँगी। संसारसे सम्बन्ध तोड़कर मैंने तुम्हारा आश्रय लिया है। संसारसे सम्बन्ध जोड़नेके लिए मैं तुम्हारा आश्रय नहीं छोड़ूँगी। तुम इतना कह दो 'तू पापिनी है, तू पाप कर रही है;' फिर चाहे कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊँगी, तुम्हारी गोदसे मैं अलग नहीं होऊँगी, तुम्हारे ही आश्रयमें रहूँगी। चार वर्ष पहले तुम्हारे सामने मैंने जो सेवा-व्रत ग्रहण किया है, उसे भंग न करूँगी। हृदयकी इस वासनाको—इस दुर्बलताको—दूर कर दूँगी।

[बाहर पद-शब्द सुनाई पड़ता है।]

सुनो, यह उसीका पद-शब्द है। तुम सुनती हो? वह आ रहा है, देवि, मुझे ले जानेके लिए वह आ रहा है। मुझे विश्वास है तुम अपनी दासीको पापिनी न होने दोगी। यदि यह पाप है तो कह दो, मैं नहीं जाऊँगी।

[द्वारपर आघात होता है।]

मैं क्या करूँ? वह आ गया, द्वारपर आ गया।

[उठकर जाती है और द्वार खोल देती है।]

[कुमारसिंह मंदिरमें प्रवेश करता है। उसके साथ एक बालक भी वस्त्र और आभूषण लेकर आता है। उसे रखकर वह चला जाता है।]

कमला—

कुमार, तुम अकेले नहीं आये हो? वृक्षके नीचे वह कौन खड़ा है?

कुमारसिंह—

कमला, कुछ भय मत करो। वह तुम्हारी ही सेवाके लिए खड़ा है। पर तुम उदास कैसी हो? तुम्हारा शरीर काँप क्यों रहा है? प्रिये, धैर्य धरो। वह देखो, आकाशमें नक्षत्र भी हम लोगोंके आगमनकी प्रतीक्षासे चंचल हो रहे हैं। आओ, आज तुम्हें मैं अपने हृदय-मंदिरकी अधिष्ठात्री देवी बनाऊँ। पर तुम्हारा भय अब भी नहीं गया है। क्या तुम्हें कुछ आशंका है? प्रिये, देखो, मैंने तुम्हें अपने बाहु-पाशमें बद्ध कर लिया है। तुम इससे निकल नहीं सकतीं। अब मंदिरकी अंधकार-पूर्ण छायामें मत जाओ। प्रेम आजतक उसमें निद्रित था। अब प्रेमने आलोकका दर्शन किया है जो उसे दुर्लभ हो गया था। यह प्रेमका विजय-दिवस है। आज प्रेमने हम लोगोंके हृदयोंको एकत्रित कर भविष्य भाग्यका निश्चय कर दिया। कमला, आज मैं तुम्हें प्रथम वार देखता हूँ, तुम्हारे समीप आकर तुम्हें स्पर्श करता हूँ।

[कमलाको हृदयसे लगा लेता है।]

कमला—

कुमार, मुझे स्पर्श मत करो, मुझसे दूर रहो। क्या तुमने ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी?

कुमारसिंह—

वह प्रेमकी प्रतिज्ञा नहीं थी। प्रेमी कभी ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करेगा जिससे वह प्रेमकी उपासना न कर सके। सच पूछो तो प्रेमीको प्रतिज्ञा करनेका कुछ अधिकार नहीं है। जिसने दूसरेको अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया वह किस प्रकारके अधिकारसे, किस वस्तुके अभिमानसे, प्रतिज्ञा कर सकता है? क्षणक्षणमें प्रेमी दान करता है, अपना सब कुछ दे डालता है। यदि भूलसे मैंने प्रतिज्ञा कर डाली तो उसका प्रायश्चित्त भी करूँगा।

[कमलाके अधरोंका चुम्बन करता है।]

पर अब विलम्ब मत करो। रात्रि व्यतीत हो रही । आकाश शुभ्र हो रहा है। मेरा अश्व जानेके लिए उत्सुक हो रहा है। आओ। यह देखो, यहाँ सीढ़ी ह। बस, अब नीचे उतरनेके लिए एक ही सीढ़ी रह गई है।

[इतनेमें देखता है कि कमला मूर्छितसी हो रही है।]

प्रिये, यह क्या? तुम मुझे कुछ उत्तर नहीं देती हो, तुम श्वास नहीं ले रही हो। तुम्हारा शरीर इतना शिथिल क्यों हो रहा है? कमला, अधीर मत होओ, साहस कर आगे बढ़ो। कहीं ऐसा न हो कि उषःकाल अपनी ज्योतिके स्वर्ण-जालसे हम लोगोंके सुख-पथको निरुद्ध कर दे। आओ, विलम्ब मत करो।

कमला—

कुमार, मुझे छोड़ दो, मैं नहीं जासकती हूँ।

कुमारसिंह—

हृदयेश्वरि, प्राणाधिके, तुम मूर्छित हो रही हो। अपना मुख उठाओ। यह कैसा कान्तिहीन हो रहा है। यह तुम्हारा अवगुण्ठन ही तुम्हारे श्वासको रोककर तुम्हें कष्ट दे रहा है।

[कमलाके मुखसे अवगुण्ठनको हटा देता है। हठात् कुमारका हाथ वेणीपर पड़ जानेसे उसका बन्धन खुल जाता है और कमलाके— जिसे अब भी कुछ सुधि नहीं थी—मुखपर उसका केश-कलाप फैल जाता है।]

कमला (चैतन्य होकर)—

यह क्या है? कुमार, तुमने यह क्या किया है? मेरे मुखपर यह क्या है?

कुमारसिंह—

कमला, तुम्हारे केशोंने ही तुम्हें जागरित किया है। देखती हो? तुम अपने ही सौन्दर्यसे ढँक गई हो। तुम कभी नहीं जानती थीं, मुझे भी नहीं मालूम था कि तुम्हारा ऐसा लावण्य है। मैं समझता था मैंने तुमको देख लिया है। पर मैं तुम्हें आज देख रहा हूँ। प्रिये, तुम अबतक मेरे स्वप्नोंकी प्रतिमा थीं। आज तुम मेरी हुई हो। इन केशोंकी भाँति आज मैं तुम्हें मंदिरके अस्वाभाविक बन्धनसे बिलकुल उन्मुक्त कर देता हूँ।

[कमलाके मंदिरके परिधानको निकालकर उसे नवीन वस्त्र और आभरणोंसे अलंकृत कर देता है।]

कमला—

कुमार, तुम यह क्या करते हो? हाय, तुमने यह क्या किया?

[देवीकी ओर देखकर]

देवि, मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ । मैं विवश हूँ । तुम मेरी सहायता करो । भगवति, यदि तुम मुझे त्याग दोगी तो मैं किससे प्रार्थना करूँगी ?

कुमारसिंह—

कमला, यह इसके लिए उचित समय था । तुम अपने नवीन परिधानकी ओर दृष्टि करो । जान लो, आजसे तुम्हारा नवीन जीवन प्रारंभ होता है । तुम अब इस मंदिरकी परिचारिका नहीं हो । तुम मेरी हृदयेश्वरी हो ।

कमला (अपने मंदिरके परिधानको लेकर)—

देवि, मैं अब कुछ नहीं कह सकती हूँ । मैं अब प्रार्थना भी नहीं कर सकती हूँ । मैं रोती हूँ, केवल रोकर हृदयको शांति दे सकती हूँ । मैं नहीं जानती थी मैं उसे इतना चाहती हूँ । मैं नहीं जानती थी तुम्हारी ओर मेरा इतना प्रेम है । मैंने सुना है तुम दयावती हो, तुम सब लोगोंका मनोरथ पूर्ण कर देती हो । देवि, मेरी भी प्रार्थना सुन लो, मेरी भी याचना स्वीकार कर लो । मुझे कुछ कह दो, किसी प्रकार बता दो कि मैं पाप कर रही हूँ । भगवति, अन्नपूर्णे, सम्पूर्ण संसारपर तुम्हारी करुणावृष्टि होती है, क्या मुझपर तुम दया नहीं करोगी ? सब तो कहते हैं तुम करुणामयी हो ।

कुमारसिंह—

इसमें भी क्या कुछ संदेह है ? देवी अवश्य करुणामयी है ।

उसकी ओर देखो। उसके मुखपर केवल दयाका भाव है। घृणा, क्रोध अथवा लज्जाका थोड़ा भी चिह्न नहीं है। भगवती अन्नपूर्णा स्वर्गकी देवी है। वहाँ केवल प्रेमका राज्य है। मुझे ऐसा जान पड़ता है, देवी तुम्हारी ओर प्रेमार्द्र दृष्टिसे देख रही है। उसके नेत्र स्मित-पूर्ण भी हैं, मानों तुम्हारे ही अश्रुजलोंने उनमें स्मितकी यह आभा डाल दी हो। कमला, क्या तुमने यह देखा है कि देवीके और तुम्हारे मुखमें कितना सादृश्य है? मुझे तो कुछ भी भेद नहीं मालूम होता है। मेरे लिए तुम ही देवी हो। मैं सच कहता हूँ, यदि तुम देवीके वस्त्र पहनकर सिंहासनपर बैठ जाओ तो लोग तुम्हारी ही पूजा करने लगें।

कमला (देवीकी ओर देखकर)—

मेरी सखीने भी एक बार मुझसे ऐसा ही कहा था।

कुमारसिंह—

पर इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। देवी तुम्हारी जननी है और तुम उसकी पुत्री हो। आओ, जननी तुम्हारे प्रस्थानके समय तुम्हारे कल्याणके लिए तुम्हें आशीर्वाद दे रही है।

[शंख-नाद होता है।]

कमला, सुनो, यह कैसा शंख-नाद हो रहा है।

कमला—

रात्रिका अंतिम प्रहर व्यतीत हो गया। यह उसकी सूचनाके लिए है।

कुमारसिंह—

प्रभात हो रहा है। देखो, उन गवाक्षोंसे उषःकालकी अस्पष्ट आभा आ रही है।

कमला—

उन गवाक्षोंको मैं प्रभातके पूर्व ही खोल देती थी जिससे जब माताजी परिचारिकाओंके साथ आवें तो प्रातःकालका शीतल पवन, शान्तिप्रद प्रकाश और पक्षियोंका मधुर कलरव उनका अभिवादन करे प्रार्थनाका समय हो रहा है यह बतलानेके लिए मैं ही घंटा बजाती थी। यहाँ वह भिक्षापात्र रक्खा हुआ है जिससे मैं दरिद्रोंको अन्न और वस्त्र देती थी। अब वे लोग आते होंगे। उन लोगोंके आनेका समय हो गया है। पर आज मैं नहीं रहूँगी। आकर जब मुझे नहीं देखेंगे तो वे लोग भी क्या कहेंगे! मेरे स्थानमें कोई दूसरी परिचारिका काम करेगी। उन दरिद्रोंको भिक्षादान करनेका सौभाग्य किसी दूसरी दासीको प्राप्त होगा।

कुमारसिंह—

कमला, अब शीघ्रता करो। विलम्ब करना उचित नहीं है। थोड़ी ही देरमें परिचारिकायें आने लगेंगी। तब हम लोग जा नहीं सकेंगे। हम लोगोंके भविष्य जीवनका यह सुख-पथ सदाके लिए बन्द हो जावेगा। सुनो, यह कदाचित् उनका ही पद-शब्द है।

कमला—

हाँ, वे लोग आ रही हैं, मेरी बहिन परिचारिकायें आ रही

हैं। हाय, उनका मुझपर कितना विश्वास था, कितना स्नेह था। समझती थीं, मैं बड़ी पवित्र हूँ। मेरी सेवाको वे श्रद्धाकी दृष्टिसे देखती थीं। पर आज उन्हें सब जान पड़ेगा। जान लेते ही उन्हें घृणा होगी। मुझपर उनका जितना अधिक प्रेम था उतनी अब घृणा होगी। कलंक मैं साथ लेती जाऊँगी। केवल मेरा यह अवगुण्ठन और वस्त्र इस पवित्र मंदिरमें शेष रह जावेगा।

[हठात् उसे किसी बातका स्मरण आ जाता है और वह भूमिसे अवगुण्ठन और वस्त्र उठाकर देवीके चरणोंके पास रख देती है।]

वे लोग ऐसा न समझें कि मैंने अपने मंदिरके उस परिधान-को, जिसे उन लोगोंने मुझे प्रेमभावसे दिया था और जिससे मुझे सदा शान्ति मिलती थी, मैंने अनादार कर फेंक दिया है। देवि, मैं अपना वस्त्र तुम्हें देती हूँ। अपना कार्य-भार भी तुम्हें सौंप जाती हूँ। अब मैं मंदिरमें प्रवेश न कर सकूँगी, उद्यानसे फूल तोड़कर तुम्हारी पूजाके लिए माला न गूँथ सकूँगी। दुःख पड़नेपर अब तुम्हें हृदयकी वेदना कहने न आऊँगी। क्या मुझे कभी शान्ति मिलेगी? भविष्यमें क्या है, उसे तुम जान सकती हो; पर मैं कुछ नहीं जानती हूँ। जो कुछ होगा वह अवश्य होगा। तो मैं जाती हूँ, सदाके लिए जाती हूँ।

देवि, यहाँ लिखा हुआ है, जो कोई इस मंदिरकी आज्ञा भंग करता है उसे कभी क्षमा नहीं मिल सकती, उसे कोई प्रेमदृष्टिसे नहीं देखता है, उसके पापोंका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। देवि, कह दो, अब भी कुछ कह दो, यदि तुम्हारी इच्छा नहीं होगी तो मैं कभी नहीं जाऊँगी। मैं तुमसे असंभव,

अलौकिक कार्य करनेके लिए नहीं कहती हूँ। तुम किसी प्रकारसे, चिह्नसे, इंगितसे अपनी अनिच्छा प्रकट कर दो। कैसा भी छोटा चिह्न हो, मैं नहीं जाऊँगी। यदि प्रदीपकी यह छाया जो तुम्हारे मुखके ऊपर पड़ रही है कुछ थोड़ी हट जावे तो मैं समझ लूँगी, तुम्हारी इच्छा नहीं है। मैं फिर कभी नहीं जाऊँगी, तुम्हारे आश्रयसे, तुम्हारी गोदसे, कभी अलग न होऊँगी। यह मेरी अंतिम प्रार्थना है। देवि, मेरी ओर देखो। मैं तुम्हारी ओर देख रही हूँ, तुम्हारे चिह्नकी प्रतीक्षा कर रही हूँ।

[निश्चल दृष्टिसे देवीकी प्रतिमाकी ओर बड़ी देर तक देखती है।]

हाय, तुम तो चुप हो।

कुमारसिंह—

कमला, देवी तुम्हें जानेकी अनुमति दे रही है। चलो।

कमला—

चलो।

[कुमारसिंह कमलाका हाथ धरकर प्रभातके आलोकसे रंजित संसारमें जाता है। मंदिर थोड़ी देरके लिए निस्तब्ध हो जाता है। फिर अकस्मात् घंटा बजने लगता है।]

२

[क्रमशः घंटेका शब्द बन्द होता है। मंदिरमें फिर निस्तब्धता फैल जाती है। इसके बाद देवीकी प्रतिमामें अपूर्व जागृति आ जाती है। ऐसा जान पड़ता है वह आज तक किसी चिन्तामें निमग्न थी। फिर मूर्ति सिंहासनसे नीचे उतरकर कमलाके परिधान और अवगुण्ठनको, जिसे वह देवीके चरणोंके पास छोड़ गई थी, उठाकर अपने कौशेय वस्त्र और रत्नाभरणोंसे अलंकृत शरीरपर डाल लेती है। फिर मधुर स्वरसे कुछ गाने लगती है। गान करती हुई वह भिक्षा-पात्र लेकर मंदिरके बृहत् द्वारपर आती है।]

देवी—

पाप-तापमें जलकर भी जो होता नहीं निराश,
नहीं छोड़ सकता जो अपना प्रेमपूर्ण विश्वास।
रहता है क्या कभी जगतमें उसका पाप कलंक?
कैसा भी हो, उसको मैं तो दूँगी अपना अंक॥ १॥
याद पड़ गया रोगमें हो तो करती हूँ उपचार,
डूब रहा हो तो कर लेती हूँ उसका उद्धार।

भूल गया हो पथ तो उसका देती हूँ मैं साथ,
करुण-दृष्टिसे मुझे द्रवित कर देता सदा अनाथ ॥ २ ॥
सजल-दृगोंसे मुझको प्राणोंका देता जो दान,
उसकी भक्ति और श्रद्धाका रखती हूँ मैं मान ।
जिसकी दया-पूर्ण सेवामें होता नहीं विकार
निश्चल प्रेम देखकर उसका लेती हूँ मैं भार ॥ ३ ॥

[इतनेमें द्वारपर आघात होता है । देवी तुरंत ही द्वार खोल देती है और एक अनाथ बालिका मलिन वस्त्रमें आती है । देवीको देखकर वह द्वार ही पर छिपकर खड़ी हो जाती है और विस्मित होकर देवीकी ओर दृष्टि करती है ।]

देवी—

आओ सुधा, उद्यानमें आओ । छिपकर क्यों खड़ी होती हो सुधा ?

सुधा—

तुम्हारे वस्त्रोंमें आज यह प्रकाश कैसा है ?

देवी—

उषःकालके अनन्तर सर्वत्र प्रकाश है ।

सुधा—

तुम्हारे नेत्रोंमें यह ज्योति कैसी है ?

देवी—

जो लोग सदा प्रेम-भावसे प्रार्थना करते हैं उनके नेत्रोंमें ज्योति होती है ।

सुधा—

तुम्हारे हाथोंमें यह प्रभा कैसी है ?

देवी—

जो लोग दरिद्रोंको भिक्षा-दान करते हैं उनके हाथोंमें प्रभा रहती है ।

सुधा—

मैं अकेली आई हूँ ।

देवी—

हमारे दरिद्री बन्धु कहाँ हैं ?

सुधा—

उन लोगोंको आनेका साहस नहीं होता । उन्होंने कुछ सुना है । उससे उन लोगोंको, कमला, आनेमें भय होता है ।

देवी—

उन लोगोंने क्या सुना है ?

सुधा—

सुना है कि कुमारसिंहके साथ कमला भाग गई है । जो दरिद्रोंको सदा भिक्षा-दान करती थी, वह कमला आज नहीं है ।

देवी—

क्या मैं कमलाके समान नहीं हूँ ?

सुधा—

उनमेंसे कुछने कमलाको देखा भी था और वह भी उनसे कुछ बोली थी ।

देवी—

केवल ईश्वरने कुछ नहीं देखा, उसने कुछ नहीं सुना।

[सुधाको गोदमें लेकर]

सुधा, आज मैं तुझे ही गोदमें ले सकती हूँ। यह अबोध शिशु मुझे जान लेगा पर किसीसे कुछ कहेगा नहीं। (उसके नेत्रोंको देखकर) जीवात्माकी पवित्रताका आभास इससे मिलता है। स्वर्गमें सौन्दर्य है, पर उसमें अश्रु-जल नहीं है। सुधा, तुम रो रही हो? बस, बेटी, बस। अब देख तो आओ, हमारे दरिद्र बांधवगण कहाँ हैं? जाकर उनसे कहो मैं उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। अब विलम्ब करना उचित नहीं है। प्रार्थनाका काल हो रहा है।

सुधा (मार्गकी ओर देखकर)—

वह देखो, वे लोग आ रहे हैं।

[दरिद्र, रोगी, अशक्त, भिक्षुकोंका दल आता है। उसमें कुछ स्त्रियाँ भी हैं, कुछ बालक भी हैं और कुछ वृद्ध हैं। यह देखकर कि कमला आगे खड़ी हुई है वे लोग विस्मय, भय और संकोचके साथ आगे बढ़ते हैं। सब द्वारपर आकर खड़े हो जाते हैं और देवीकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखते हैं।]

देवी (भिक्षापात्र लेकर)—

तुम्हें क्या हो गया है? तुम लोग ठहर क्यों गये हो? शीघ्रता करो। सूर्योदय हो गया है। प्रार्थना-काल आ गया है। थोड़ी ही देरमें मेरी बहिन-परिचारिकायें आ जावेंगी और द्वार बन्द हो जावेगा। फिर भिक्षा-दान नहीं होगा। आओ, सब लोग आओ।

एक भिक्षुक (आगे बढ़कर)—

माताजी, आज हम लोगोंको भ्रम हुआ, हम लोगोंने—

देवी (उसे एक वस्त्र देकर)—

प्रकाश होनेसे भ्रम दूर होगा।

दूसरा भिक्षुक (आगे बढ़कर)—

हम लोगोंने रातके अंधकारमें बुरा स्वप्न देखा है।

देवी (उसे भी वस्त्र देकर)—

निशा-काल व्यतीत हो जानेपर अंधकार नहीं रहेगा। बान्धव-गण, आओ, हम लोग किसी प्रकारका कुभाव न रक्खें, सबको क्षमा कर दें।

एक स्त्री—

बहिन, मुझे अपनी माताके लिए वस्त्र चाहिए।

दूसरी स्त्री—

मुझे अन्न चाहिए।

तीसरी स्त्री—

मैं अपने पुत्रके लिए प्रार्थना करती हूँ, मुझे भिक्षा दो।

[दरिद्रोंका दल भिक्षाके लिए देवीके चारों ओर खड़ा हो जाता है। देवी उन लोगोंको बहुमूल्य वस्त्र, आभरण, फल, मूल वितरण करती है। देवीका भिक्षा-पात्र कभी रिक्त नहीं होता है। आज किसी वस्तुका अभाव नहीं है। जो जिसकी इच्छा करता है, वह उसी मिल जाती है। दरिद्रोंका चिरकालका मनोरथ पूर्ण हो जाता है। आज उनके आनन्दकी सीमा नहीं है। कोई अपने बहुमूल्य वस्त्रोंको देखकर चकित होता है, कोई अपने अलंकारोंको विस्मित दृष्टिसे देखता है।

दरिद्रोंका आज आनन्द-दिवस है। उनके रोग, शोक, चिंता, भय, संदेह सब दूर हो जाते हैं। सब लोग एक स्वरसे हर्ष-ध्वनि करते हैं।]

दरिद्रोंका दल—

भगवती अन्नपूर्णाकी जय! करुणामयी देवीकी जय! माता कुमारीकी जय! कमलाकी जय!

देवी—

आओ, बन्धुगण, आओ। यह प्रेमका समय है। यह प्रेमका विजय-दिवस है।—प्रेम जिसकी सीमा नहीं है, जिसका अन्त नहीं है। आज सब लोग परस्पर प्रेम करो। घृणाका भाव दूर कर दो। दोषोंका विचार मत करो। पापोंके कालुष्यको प्रेमाश्रुओंसे बहा दो। जीवनमें सुख और दुःखको एक कर दो। ईर्षा और द्वेष त्याग दो। नीचोंको हृदयसे लगा लो। उन्हें प्रेमसे आलिंगन करो।

[इतनेहीमें शंखनाद होता है। भिक्षा-पात्रमें कुछ नहीं रह जाता। देवी दरिद्रोंके समूहको द्वारसे बाहर करती है, फिर द्वार बन्द कर देती है। प्रार्थना-कालका घंटा बजता है और माताजी अधिकारिणी परिचारिकाओंके साथ आती है।]

माताजी (देवीकी ओर देखकर)—

बहिन कमला, आज तुमसे प्रार्थना-कालका घंटा नियमित समयपर नहीं बजाया गया, इस लिए तुम्हें तीन दिन तक उपवास करना पड़ेगा।

देवी (अवनतमुख होकर)—

माताजी जैसा आदेश करती हैं मैं वैसा ही करूँगी।

[माताजी आगे बढ़ती हैं और सिंहासनके पास जाकर प्रणाम करना ही चाहती हैं कि उन्हें जान पड़ा सिंहासन खाली है, देवीकी प्रतिमा उसमें नहीं है। परिचारिकायें भी भयसे स्तंभित हो जाती हैं। कुछ देर तक सब चुप रह जाती हैं। फिर जो मनमें आता है सब कहने लगती हैं।]

परिचारिकागण—

देवी नहीं हैं!

भगवती हम लोगोंको छोड़कर चली गईं।

हाय, हम कैसे रहेंगी!

मंदिर अपवित्र हो गया है।

यह किसके पापका फल है?

यह हम लोगोंका दुर्भाग्य है।

यह कैसी घटना है?

[देवी भी आगे बढ़कर सिंहासनकी ओर, जहाँ उनकी प्रतिमा थी निश्चल दृष्टिसे देखती हैं। उस समय देवीका मुख अत्यन्त शांतियुक्त जान पड़ता है।]

माताजी—

कमला, मैं जानती हूँ, तुम्हें इस समय बड़ी वेदना होती होगी। देवीकी प्रतिमाका रक्षा-भार तुमपर ही था। पर बहिन, तुम कुछ चिन्ता मत करो। कुछ भय नहीं है। यदि देवीकी ऐसी ही इच्छा है तो हम लोग क्या कर सकती हैं। परन्तु मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ। क्या तुमने कुछ देखा है? कदाचित् तुमने कुछ देखा हो, कुछ सुना हो।

[देवी चुप रहती है ।]

मुझे उत्तर दो। तुम कुछ कहती क्यों नहीं हो? तुम्हें हुआ क्या है? मुझे भी तुममें कुछ आज विचित्रता मालूम होती है। कभी कभी तुम्हारे मुखसे एक प्रभा-सी निकलती है। और यह क्या है? आज तुम्हारा वस्त्र कैसा है! वह हम लोगोंके वस्त्र ऐसा नहीं है । मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हुआ है? तुम्हें देखकर इस समय कोई नहीं कह सकेगा तुम कमला हो। तुम्हारे वस्त्रोंसे यह कैसी आभा निकल रही है?

[देवीके परिधानको स्पर्श करती है ।]

यह क्या है? इसे स्पर्श करते ही मेरा हाथ भी आलोकित हो उठता है।

[देवीका हाथ उठाकर देखती है उसमें सुवर्णका कंकण है ।]

कमला, यह तो देवीका कंकण है!

[क्रोधके आवेगमें आकर वह देवीका परिधान बिलकुल अलग कर देती है और यह देखकर उसके आश्चर्य और क्रोधकी सीमा नहीं रहती है कि देवीके सब अलंकार, उनका कौशेय वस्त्र भी, वह पहने हुए है। भय, लज्जा और घृणासे माताजी अधिकारिणी और परिचारिकायें कुछ देरतक निस्तब्ध हो जाती हैं। परस्पर एक दूसरीकी ओर देखने लगती हैं। इसके बाद माताजी अपने हृदयके आवेगको, उसकी प्रबल उत्तेजनाको, किसी प्रकारसे रोककर सब लोगोंकी निस्तब्धताका सहसा भंग कर देती हैं।]

माताजी—

भगवती, यह क्या हुआ?

परिचारिकागण—

इसने (कमलाने) प्रतिमाको नष्ट कर डाला है।

इसकी मति भ्रष्ट हो गई है ।

आभरणोंके लोभसे इसने ऐसा किया है ।

इसकी ऐसी नीच बुद्धि कैसे हुई ?

यह इसका उन्माद है ।

यह कुछ भी नहीं बोलती है ।

अब हम लोगोंको यहाँ ठहरना उचित नहीं है । इसके साथमें रहनेसे हमें इसके दुष्कर्मोंका फल सहना पड़ेगा । यह कभी संभव नहीं है कि देवी इसे दंड न दें । मुझे ऐसा जान पड़ता है कि देवीकी प्रचंड क्रोधाग्निमें पड़कर हम लोग भस्म हो जावेंगी । चलो, सब भाग चलें ।

[सब परिचारिकायें भय-भीत होकर भागनेका उपक्रम करती हैं, पर माताजी सबको साहस देकर रोक लेती हैं ।]

माताजी—

मत जाओ, कोई भी मत जाओ । क्या पापसे डरकर हम-लोग अपना स्थान त्याग दें ? जो कुछ भाग्यमें होगा वह अवश्य होगा । आओ, हम लोग मिलकर प्रार्थना करें जिससे देवीकी क्रोधाग्नि शान्त हो ।

(कामिनी) एक परिचारिका—

माताजी, मैं विनय करती हूँ आप यहाँ मत ठहरें ।

(भामिनी) दूसरी परिचारिका—

हम लोगोंको स्वामीजीके पास जाना चाहिए ।

(दामिनी) तीसरी परिचारिका—

वे इसका कुछ उपाय कर सकते हैं ।

मताजी—

बहिन, तुम्हारा परामर्श उचित है। चलो, हम लोग स्वामी-जीके पास चलें। इसे भी साथमें ले जाना होगा। फिर स्वामी-जीकी जैसी आज्ञा होगी वैसा किया जावेगा। देखें, भाग्यमें क्या है!

(कामिनी) एक परिचारिका (देवी पासके जाकर)—

दुष्टे, तूने ऐसा दुष्कर्म क्यों किया ?

(भामिनी) दूसरी परिचारिका (देवीके पास जाकर)—

क्या तुझे थोड़ा भी भय नहीं हुआ ?

(दामिनी) तीसरी परिचारिका (देवीके पास जाकर)—

मैं तुझसे घृणा करती हूँ।

(सुकेशी) चौथी परिचारिका—

हाय, बहिन कमला, तुमसे यह कैसे हुआ ?

[देवी उसकी ओर स्नेह-दृष्टिसे देखती हैं।]

कामिनी (सुकेशीसे)—

यह तुम्हारी ओर देख रही है। तुम इसकी ओर मत देखो। इसे देखनेमें पाप है। यह तो तुम्हारी कभी सखी थी न ?

सुकेशी (निःश्वास लेकर)—

हाँ, यह मेरी सखी थी और अब भी है।

कामिनी (आश्चर्यसे)—

क्या अब भी इसपर तुम्हारा स्नेह है ?

सुकेशी—

कैसे कहूँ स्नेह नहीं है ?

कामिनी—

बहिन, यद्यपि इसके पापोंसे मुझे घृणा है तो भी तुम्हारा स्नेह देखकर मुझे इसपर दया आती है। पर इसने, बहिन, ऐसा किया क्यों?

सुकेशी—

बहिन, भगवतीकी माया कौन समझ सकता है! नहीं तो कहाँ मेरी सुशीला, धर्मपरायणा, सखी और कहाँ यह दुष्कर्म!

दामिनी (भामिनीसे)—

बहिन, मुझे तो पहले भी इसके चरित्रपर संदेह होता था

भामिनी—

कैसे? तुमने तो मुझसे कभी कुछ नहीं कहा।

दामिनी—

बहिन, कैसे कहूँ, वह केवल मनका संदेह था। पर आज वह दृढ़ हो गया, इससे कहती हूँ। तुम समझ सकती हो, जिसका चरित्र अच्छा है उसके ऐसी पाप-बुद्धि कैसे हो सकती है?

भामिनी—

पर तुम्हें किस प्रकारका संदेह हुआ था?

दामिनी—

यह एकान्तमें कभी कभी कुमारसिंहसे मिलती थी।

भामिनी—

छिः, यह पाप-कथा मत कहो।

दामिनी—

मैंने स्वयं एक बार देखा था। यह उस समय कुमारसे कह रही थीं, "मुझपर दया करो। क्या तुम मेरे जीवनमें शान्ति देखना नहीं चाहते ?"

भामिनी—

कुछ भी हो, बहिन, मैं इसे इतनी बुरी नहीं समझती थी। पर कौन किसे जानता है। हो सकता है, जिसे हम पापिनी समझती हैं वह देवी हो।

[स्वामीजी व्यग्रतासे आते हैं।]

माताजी—

भगवन्, मैं नहीं कह सकती हूँ कि इस समय हम लोगोंको कैसी वेदना हो रही है। आप ही कुछ उपाय बता सकते हैं।

स्वामीजी—

वत्से, प्रार्थना करो, कमलाके पापोंके लिए देवीसे प्रार्थना करो। पर मैं कमलासे कुछ पूछना चाहता हूँ (देवीकी ओर देखकर)। कमला, मेरी ओर देखो, मुझे उत्तर दो।

[देवी अवनत-मुख होकर पृथ्वीकी ओर देखती हैं।]

कमला, मैं तुम्हें देवीके नामसे पुकारता हूँ, मुझे उत्तर दो।

[देवी फिर भी स्थिर रहती हैं।]

कमला, तुम मेरी नहीं, देवीकी आज्ञा भंग करती हो। तुम्हें विदित नहीं है कि देवीकी क्रोधाग्निमें कैसा उत्ताप है ? मैं कहता हूँ, तुम यदि मेरी ओर नहीं देखोगी तो तुम उस क्रोधाग्निमें पड़कर दग्ध होजाओगी।

माताजी—

यह कुछ नहीं सुनती है।

कामिनी—

यह सुनना नहीं चाहती है।

भामिनी—

इसे कुछ भय नहीं है।

दामिनी—

निर्लज्ज हो जानेसे यह निर्भय हो गई है।

स्वामीजी—

मुझे अब थोड़ा भी संशय नहीं है। मैंने जान लिया इसे किसका गर्व है। जब पाप प्रबल हो जाता है तब उससे एक प्रकारका दर्प होता है। उससे न तो भय होता है और न आशंका होती है। तब मनुष्य उन्मत्त हो उठता है। कमलाकी भी ऐसी ही दशा हो गई है।

(माताजीकी ओर देखकर)

वत्से, मैं इसे तुम्हारे पास छोड़ जाता हूं। तुम इसे अब कारागारमें ले जाओ जहाँ पापियोंको दंड दिया जाता है। निर्दय होकर इसका अहंकार चूर्ण करो। मैं अब जाता हूँ, तुम भी इसे ले जाओ।

[परिचारिकायें देवीको ले जाती हैं। केवल सुकेशी नहीं [illegible]ाती है। वह एक वार कमलाकी ओर सजल दृष्टिसे देखकर उद[illegible] जा[illegible] है। सब कारागारमें प्रवेश करती हैं। कारागारमें खू[illegible] अं[illegible]कार था; पर [illegible] लोगोंके जाते ही वहाँ प्रकाश हो जाता है इसके बाद एक विचित्र[illegible] [illegible]ता है। सब विस्मय-

विमुग्ध होकर सुनने लगती हैं। न जाने कौन करुण स्वरसे भगवती अन्नपूर्णाकी स्तुति कर रहा है। जान पड़ता है कोई गन्धर्व स्वर्गलोकसे आकर संसारके कल्याणके लिए देवीसे प्रार्थना कर रहा है। ऐसा मधुर स्वर, ऐसा पवित्र संगीत, इस मर्त्यलोकमें नहीं हो सकता। क्रमशः स्वर तीव्र होने लगता है और वायु-मंडलमें उत्थित होकर वह सम्पूर्ण मन्दिरको कम्पित कर देता है। उसमें वेदनाका भाव नहीं है। एक एक स्वरसे उत्साह प्रकट होता है। जान पड़ता है कि मर्त्यलोककी दुर्बलता दूर कर वह उसमें नवीन शक्तिका संचार कर देना चाहता है। अन्तमें स्वर अत्यंत तीव्र हो जाता है। उसमेंसे एक ज्वालासी निकलने लगती है। उसे कोई नहीं सह सकती है। सब घबड़ाने लगती हैं और देवीको चारों ओरसे घेर लेती हैं। फिर गान बन्द हो जाता है। मर्त्यलोकके पापोंको दग्ध कर उसकी ज्वाला शान्त हो जाती है। क्षणभरके बाद एक नवीन गान आरम्भ होता है। उसमें अनेक स्वर सुनाई पड़ते हैं। सब निश्चल होकर सुनती हैं। थोड़ी देरमें वह भी वायुमंडलमें लीन हो जाता है। फिर सहसा देवीके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगती है। क्षणभरमें कारागार पुष्पोंसे भर जाता है। थोड़ी देर तक सब भयसे स्तंभित हो जाती हैं। पर अन्तमें उनके हृदयका द्वार खुल जाता है और सब आनंदमें मग्न हो जाती हैं। देवीको लेकर सब बाहर आती हैं, पर पुष्पोंकी वर्षा होती ही रहती है। सब लोग देवीकी बन्दना करने लगती हैं। फिर परस्पर एक दूसरीको आलिंगन करती हैं। उनके सब घृणा-भाव दूर होते हैं। सब अपना हर्ष प्रकट करने लगती हैं।]

परिचारिकागण--

कमला पवित्र है।

इसके पवित्र शरीरमें देवी निवास कर रही है।

इसके शरीरसे एक तेजःपूर्ण आभा निकल रही है।

मंदिरका अंधकार दूर हो गया।

कमलासे दिव्य आलोक पाकर हम लोगोंमें प्रेमकी नवीन जागृति हुई है।

माताजी—

आओ, हम लोग कमलासे अपने पापोंके लिए क्षमा माँगें ।

दामिनी—

हाय, मैंने इसके पवित्र चरित्रपर संदेह किया था ।

भामिनी—

मैं इसे पापिनी समझती थी ।

कामिनी—

आओ, हम लोग कमलाकी वन्दना करें ।

माताजी—

आओ, आओ । सबको क्षमा मिलेगी । आज प्रेमका विजय-दिवस है ।

[इतनेमें द्वारपर आघात होता है । देवी जो अब तक निश्चेष्ट सी हो गई थीं चैतन्य हुईं । वे तुरन्त ही जाकर द्वार खोल देती हैं । तीन दरिद्र आते हैं । देवी उनका स्वागत करती हैं । और, फिर जैसे कुछ हुआ ही न हो, वे नियमित रीतिपर कमलाका सब काम करती हैं ।]

३

[अन्नपूर्णाके मंदिरका दृश्य वैसा ही है जैसा प्रथम अंकमें था। सिंहासनपर देवीकी प्रतिमा स्थित है। कमलाका अवगुण्ठन और वस्त्र सिंहासनके नीचे पड़ा है। देवी अपने वस्त्र और अलंकारोंसे युक्त है। मंदिरका द्वार खुला हुआ है। प्रदीप जल रहा है। भिक्षा-पात्रमें दरिद्रोंको देनेके लिए अन्न और वस्त्र रक्खे हुए हैं। सब कुछ वैसा ही है जैसा कमला कुमारसिंहके साथ जाते समय छोड़ गई थी। शिशिरका उष:काल है। प्रार्थना-कालके लिए घंटा बज रहा है, यद्यपि उसका बजानेवाला कोई नहीं है। थोड़ी देरमें मंदिर निस्तब्ध हो जाता है और कमला प्रवेश करती है। उसके शरीरमें मैले और फटे हुए वस्त्र हैं। उसके केश श्वेत हो गये हैं, शरीर शिथिल पड़ गया है, नेत्रोंमें ज्योति नहीं है, मुखमें कांति नहीं है। उसे देखनेसे जान पड़ता है कि उसके जीवनकी प्रदीप-शिखा मलीन हो गई है; अब उसमें थोड़ा ही प्रकाश रह गया है। वह क्षणभर ठहर जाती है, फिर कुछ शंका, कुछ भयसे आगे बढ़ती है। भय-भीत मृगीकी भाँति वह चकित होकर चारों ओर देखती है। फिर मंदिरको जन-शून्य देख कर वह चुप चाप आती है, पर ज्यों ही उसकी दृष्टि देवीकी प्रतिमापर पड़ती है त्यों ही मुखसे—हृदयसे वेदनाका एक चीत्कार उद्गत होता है। उसके चीत्कारमें, कौन कह सकता है, दुःख, आशा और हर्षका कितना अंश है। तुरन्त ही वह दौड़-कर देवीके चरणोंपर गिर जाती है।]

कमला—

देवि, मैं आई हूँ। मुझे अलग मत करो, पद-दलित भले ही करो। संसारमें अब मेरा कुछ नहीं है, केवल तुम हो। तुम

मुझे त्याग मत करो। मुझे आशा थी, मैं तुम्हें एक बार भली-भाँति देख लूँगी। पर आज नेत्रोंमें इतनी शक्ति है, तो भी तुम्हारी करुणा-मूर्ति नहीं देख सकती हूँ। तुम्हें प्रणाम करनेके लिए, तुम्हारे चरणोंको स्पर्श करनेके लिए, हाथ बढ़ाना चाहती हूँ। पर हाथ शिथिल हो गये हैं, बढ़ते नहीं हैं। मैं प्रार्थना करना भी भूल गई हूँ, तुमसे कुछ नहीं कह सकती हूँ। रोकर भी अपने हृदयकी वेदना प्रकट नहीं कर सकती। अब नेत्रोंमें अश्रु-जल नहीं है। कदाचित् तुम अपनी दासीको नहीं पहचान सकोगी। इस लिए मैं तुम्हें अपना नाम कह देती हूँ। देवि, यह देखो, आज तुम्हारी अभागिनी परिचारिका कमलाकी कैसी दशा है। यह उसके पापका फल है,—वह पाप जिसे मनुष्य सुख कहता है, जिसके लिए वह सदा चेष्टा करता है। आज बीस वर्ष हो गये, मैंने तुम्हारा आश्रय त्याग कर संसारमें प्रवेश किया था। उस दिनसे मुझे कुछ भी सुख नहीं है, थोड़ी भी शांति नहीं है। मैं अब आती हूँ, अपना मान, हृदय और कलंकित शरीर लेकर आती हूँ। मैं जानती हूँ, तुम्हारे मंदिरमें मेरे लिए अब कोई स्थान नहीं है। उन लोगोंने अवश्य ही मेरी पापकथा सुन ली होगी। वे मुझे यहाँ रहने नहीं देंगे। पर मैं रहनेके लिए स्थान नहीं चाहती हूँ। मैं आज मरनेके लिए आई हूँ। अपने अंतिम कालमें तुम्हें एक बार देखना चाहती हूँ। तुम्हारे इन चरणोंके पास अपना प्राण देना चाहती हूँ। पर यह भी असंभव है। जब तक उन्हें मालूम नहीं है कि मैं यहाँ आई हूँ, तब तक मैं तुम्हारे पास खड़ी रह सकती हूँ।

जानते ही वे मुझे यहाँ पलभर भी ठहरने नहीं देंगे, तुरन्त ही मंदिरसे बाहर कर देंगे। मुझपर उन्हें घृणा करना उचित है। संसार मुझसे घृणा कर रहा है, वे क्यों नहीं करेंगे? पापिनीपर केवल तुम्हारी ही दया-दृष्टि हो सकती है। और मुझे विश्वास है सब कुछ जान कर भी तुम मुझपर अवश्य दया करोगी।

[चारों ओर देखकर]

पर मैं अकेली क्यों हूँ? यह मंदिर शून्य कैसा है? मेरे स्थानमें कौन दासी काम कर रही है? वह कहाँ गई है? प्रदीप जल रहा है। प्रार्थना-कालका घंटा बज गया है। सूर्योदय भी हो गया है पर अबतक कोई परिचारिका नहीं आई।

[इतनेमें देखती है उसके वस्त्र और अवगुण्ठन सिंहासनके नीचे रक्खे हुए हैं।]

यह क्या है? मेरी दृष्टि इतनी मलीन हो गई है कि मैं कुछ भी नहीं पहिचान सकती हूँ। यह तो मेरा ही वस्त्र है, मेरा ही अवगुण्ठन है, आज बीस वर्ष पहले जिसे मैं यहाँ छोड़ गई थी।

[उठाकर पहन लेती है।]

देवि, क्षमा करो यदि मैं तुम्हारे मंदिरके इस पवित्र परिधानको अपने कलंकित देहके स्पर्शसे कलुषित कर रही हूँ। मेरे इन फटे हुए वस्त्रोंसे अंग ढँकते नहीं हैं। और यह शीत-काल भी है। इससे मैं अपनी इच्छा नहीं रोक सकती हूँ। देवि, क्या तुमने ही—क्योंकि मैं तुम्हें ही सौंप गई थी—इसे मेरे लिए आज तक रक्खा था? क्या अब तुम ही इसे मुझे दे रही हो?

[बाहर पद-शब्द सुनाई पड़ता है।]

यह किसका पद-शब्द है ? जान पड़ता है मेरी बहिनें परिचा-रिकायें आ रही हैं। मैं यहाँ ठहर नहीं सकती, उन्हें अपना मुख नहीं दिखा सकती। देवि, दया करो।

[ज्यों ही उठकर जाना चाहती है, त्यों ही मूर्छित होकर गिर पड़ती है। थोड़ी ही देरमें माताजी अधिकारिणी परिचारिकाओंको साथ लेकर आती हैं। सहसा उन लोगोंकी दृष्टि कमलाकी मूर्छित देहपर पड़ती है। तुरन्त ही सब दौड़कर उसके पास जाती हैं।]

माताजी (कमलाके देहको स्पर्श कर)—

कमलाने, जान पड़ता है, प्राण त्याग दिये।

कामिनी—

भगवतीने दिया था और वे ही उसे ले गईं।

भामिनी—

विमान आ गया और वह अप्सराओंके साथ स्वर्ग चली गई।

सुकेशी (उसे गोदमें लेकर)—

नहीं, नहीं, यह मरी नहीं है। देखो, यह अब भी निःश्वास ले रही है।

माताजी—

पर उसका मुख कितना कान्ति-हीन हो गया है, वह कितनी दुर्बल हो गई है।

दामिनी—

एक ही रात्रिमें इसकी ऐसी दशा हो गई है।

कामिनी—

कल इसे खूब कष्ट हुआ होगा। इससे ही इसका शरीर इतना क्षीण हो गया।

सुकेशी—

इसमें सन्देह नहीं है कल इसे बड़ी वेदना थी। मैंने देखा यह रोती भी थी। मैंने इससे पूछा पर इसने कुछ कहा नहीं। तब मैंने कहा मैं तुम्हारा काम-काज कर दूँगी, तुम जाकर विश्राम करो। किन्तु इसने मेरी बातोंका कुछ ख्याल नहीं किया। कहने लगी, मैं आज एक पवित्रात्माकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। जान पड़ता है इसने कल रातभर विश्राम नहीं किया।

माताजी—

यह कल किसी पवित्रात्माकी प्रतीक्षा करती थी। वह कौन हो सकती है?

[इतनेमें उनकी दृष्टि सिंहासनकी ओर जाती है। उसपर देवीकी प्रतिमा देख कर वे हर्षसे चिल्ला उठती हैं। सब परिचारिकायें भी उधर देखने लगती हैं। देवीका दर्शन कर सबके आनन्दकी सीमा नहीं रहती।]

कामिनी—

वह देखो। देवी आ गई। उनके शरीरमें सब अलंकार हैं।

भामिनी—

मुखमें कैसा माधुर्य है! नेत्रोंमें कैसी ज्योति है!

दामिनी—

जान पड़ता है कमलाहीकी प्रार्थनासे देवी मर्त्यलोकमें आई हैं।

सुकेशी (भयसे)—

देखो, देखो, कमलाकी ओर देखो। वह कैसी हो रही है।

कामिनी (कमलाके पास आकर)—

कमला, ऐसे सुदिवसमें, जो हमें तुमसे ही मिला है, तुम हमें छोड़कर चली जाओगी?

भामिनी—

कमला, हम लोगोंके अपराधोंको विना क्षमा किये ही मत जाओ। (स्वगत) हाय, मैं तब कैसी नीच हो गई थी जब इसपर संदेह किया था।

सुकेशी—

हाय, यह तो कुछ सुनती है। मैं अब क्या करूँ?

कामिनी—

इसे शय्यापर रक्खो, यहाँ इसे कष्ट होता होगा।

माताजी—

नहीं, इसे देवीके चरणोंपर ही रहने दो। देवी ही इसकी रक्षा करेंगी। पर यह कौशेय वस्त्र बिछा दो। यह पवित्र भी है। दूसरा वस्त्र रखनेसे इसे कष्ट होगा।

[सब कौशेय वस्त्रकी शय्या बना कर कमलाको देवीके पास रखती हैं।]

माताजी—

इसका यह परिधान और अवगुण्ठन भी अलग कर दो। इससे श्वास निरुद्ध होता है।

[सुकेशी वैसा ही करती है और सबको यह देखकर आश्चर्य होता है कि वह मैली और फटी हुई साड़ी पहने हुए है।]

कामिनी—

माताजी, तुमने क्या कभी इसको इतनी मैली और फटी हुई साड़ीमें देखा था?

भामिनी—

और, बहिन, यह इसके पैरोंमें कीचड़ कितना है!

वामिनी—

मैं नहीं जानती थी इसके केश इतने श्वेत हो गये हैं!

माताजी—

हम सब कुछ नहीं समझ सकती हैं। यह तपस्विनी है। कदाचित् यह कोई कठोर तपस्या कर रही थी।

सुकेशी (हर्षसे)—

इसे सुधि आ रही है। देखो, यह अपने नेत्र खोल रही है।

[धीरे धीरे कमला चैतन्य होकर चारों ओर देखती है।]

कमला (मानो कोई स्वप्न देख रहा हो)—

मेरा शिशु—हाय! जब उसकी क्षुधासे मृत्यु हो गई—तुम हँस क्यों रही हो?

माताजी—

हम लोग हँस नहीं रही हैं, किसी प्रकारसे तुम्हारी मूर्छा दूर होती देख, प्रसन्न हो रही हैं।

कमला—

मुझे मूर्छा आगई थी! (कुछ स्मरण कर) हाँ मुझे अब स्मरण आया। मैं अत्यन्त कष्ट सहकर मंदिरमें आई हूँ। मेरी ओर ऐसे भयसे मत देखो। मैं अब कलंकका पात्र बनकर नहीं रहूँगी। थोड़ी ही देरमें मेरा यह कलंकित जीवन समाप्त हो जायगा। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा होकर लेना। कोई नहीं जान सकेगा। और यदि तुम्हें भय है कि कोई कुछ कह देगा तो मैं प्रतिज्ञा करती हूँ, मैं कुछ नहीं कहूँगी। तुम जैसी आज्ञा दोगी

मैं वही करूँगी। क्योंकि उन लोगोंने मेरे जीवनमें—मेरी आत्मामें—कुछ भी पवित्रता नहीं रहने दी है। मैं जानती हूँ, मुझे ऐसी अनुमति कभी नहीं दी जा सकती कि मैं तुम लोगोंके सामने इस पवित्र मंदिरमें अपना प्राण त्याग करूँ। तो भी तुम लोगोंने मुझपर बड़ी दया की है, मुझे देवीके चरणोंके पास स्थान दिया है, मंदिरसे बाहर नहीं किया। पर यदि तुम चाहो और देवीकी ऐसी इच्छा हो तो—तो भी मुझे मंदिरसे बहुत दूर मत करो। पर यह क्या है? तुम लोगोंने मुझको इस पवित्र वस्त्रपर क्यों रक्खा है? यह तो मेरे देहके स्पर्शसे दूषित हो गया। तुम कुछ भी नहीं कहती हो, तुम्हें थोड़ा भी क्रोध नहीं होता है। देखती हूँ; तुम्हारे नेत्रोंमें जल भर आया है। मैं समझती हूँ, तुम सब मुझे अबतक नहीं पहचान सकी हो।

माताजी (कमलाके मस्तकको छूकर)—

पर हमलोग तुम्हें जानती हैं, भली भाँति पहचानती हैं कि तुम कैसी पवित्रात्मा हो।

कमला—

मुझे स्पर्श मत करो। मैं दुराचारिणी हूँ।

दामिनी (चरणोंको स्पर्श कर)

मैं तुम्हारे चरणोंको स्पर्श कर पवित्र होती हूँ।

कमला—

तुम यह क्या कर रही हो? तुम नहीं जानती हो मैंने कैसे पाप किये हैं।

कामिनी——

तुम स्वर्गसे आ रही हो। मैं भी तुम्हें प्रणाम करती हूँ।

कमला——

तुम्हें क्या हुआ है? तुम यह सब क्या कह रही हो? मैं नहीं समझती हूँ। (सुकेशीके ओर देखकर) तुम क्या मेरी बहिन सुकेशी हो?

सुकेशी——

हाँ, बहिन कमला, मैं सुकेशी ही हूँ जिसपर तुम्हारा इतना स्नेह है।

कमला——

सुकेशी, तुम्हें स्मरण होगा, आज बीस वर्ष पहले मैंने तुमसे कहा था मैं सुखी नहीं हूँ।

सुकेशी——

हाँ, उसके दूसरे ही दिन तुम्हें भगवती अपना कार्य-भार सौंप गईं।

कमला——

तुम्हारी बातोंसे मुझे आश्चर्य होता है। मैं कुछ समझ नहीं सकती हूँ। मेरी स्मरणशक्ति निर्बल हो गई है। जान पड़ता है मैं स्वप्न देख रही हूँ। नहीं, नहीं, यह स्वप्न नहीं है। तुम सब भूलती हो, मुझे पहचानती नहीं हो। देखो, मैं पापिनी कमला हूँ।

माताजी——

पर हम सब जानती हैं तुम कमला हो, तपस्विनी, सदाचारिणी, पुण्यशीला हो।

कमला——

माताजी, तुम भी ऐसा कहती हो। मुझे स्मरण है, तुम्हें पाप-पुण्यका बड़ा विचार था। मुझे कुछ हो गया है अथवा तुम सब

परिहास कर रही हो। पर मैं देखती हूँ तुम सब गंभीर हो। यह देखो, यहाँ बहिन कामिनी खड़ी है।

कामिनी—

हाँ, बहिन, मैं कामिनी ही हूँ।

कमला—

और तुम बहिन भामिनी हो?

भामिनी—

हाँ बहिन।

कमला—

और यह बहिन दामिनी है। यह भी मेरी ओर चिंतित दृष्टिसे देख रही है। कोई भी मुझसे घृणा नहीं करती। क्या तुम देखती नहीं हो मेरी कैसी दशा हो गई है?

माताजी—

यह तुम्हारी कठोर तपस्याका फल है।

कमला—

नहीं, नहीं, यह मेरे पापका—दुर्वासनाका—फल है। मैं इसे बीस वर्षोंसे भोग रही हूँ। पर मेरे अपराधोंका कुछ भी विचार न कर मुझे क्या तुम क्षमा करती हो, सचमुच क्या तुम मुझे क्षमाप्रदान करती हो?

माताजी—

वत्से, यदि किसीने अपराध किया है, तो मैंने किया है। मैं तुमसे क्षमा माँगती हूँ।

कमला—

माताजी, क्या तुम जानती हो मैंने क्या किया है?

मताजी—

हाँ, जानती हूँ, तुमने हम लोगोंको अंधकारसे खींचकर दिव्य आलोकमें किया है, हमारे कुभावोंको दूर कर हममें प्रेमभावका संचार किया है, सेवा और उपासनाकी शिक्षा दी है।

कमला —

पर मैं आज बीस वर्ष पहले कुमारसिंहके साथ मंदिर छोड़कर चली गई थी। तुम विस्मित हो रही हो? पर यह सच है। उसने कुछ महीनोंके बाद मुझसे प्रेम करना छोड़ दिया। जब उसके व्यवहारसे मैं निराश हो गई—जब मुझे जान पड़ा कि उसका प्रेम मुझे कुपथमें ले जानेके लिए था तब मैंने लज्जा छोड़ दी, संकोच त्याग दिया और विवेक-बुद्धिको सदाके लिए विदा दे दी। फिर अनुचित उचितका मैंने विचार नहीं किया। विपथको ही मैंने अपने लिए श्रेयस्कर मान लिया। निर्भय होकर मैं उसमें भ्रमण करने लगी। अनुतापसे मेरा हृदय फटता था, पर मैं कुछ नहीं कर सकती थी। सच तो यह है, मैंने पापको भी पतित कर डाला। अब मृत्युकालमें देवीको एकबार देखनेकी इच्छासे मैं यहाँ आई हूँ।

माताजी (कमलाके मुखपर हाथ रखकर)—

वत्से, तुम कुछ मत कहो। यह तुम्हारी कथा नहीं है। यह मर्त्य-लोककी पाप-कथा है। तुम निर्दोष हो। तुम तपस्विनी हो। तुम्हारा जीवन पवित्र है।

कमला—

मुझे अब आश्चर्य नहीं है। मैं अब तुम्हारी बातोंसे विस्मित नहीं होती हूँ। तुममें दया है। तुम्हारा स्वभाव अत्यन्त निर्मल है।

तुम मेरी बातोंपर कभी विश्वास नहीं कर सकती हो । मैं चाहती हूँ, तुम मुझसे घृणा करो, मुझे दण्ड दो । पर तुम यह कुछ भी नहीं करोगी। तुम कहती हो, मैं तपस्विनी हूँ। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है । पापोंकी विषम यंत्रणा मैं सह रही हूँ। मुझे शांति नहीं है। यह क्या तपस्या नहीं है? माताजी, यह मेरी कठोर तपस्या अंतकाल तक रहेगी।

माताजी—

वत्से, पश्चात्ताप मत करो । तुम्हारे पापोंका प्रायश्चित्त आज बीस वर्ष पहले ही हो गया । तबसे तुम देवी हो । तबसे तुम हम लोगोंपर दया-दृष्टिकर संसारके कल्याणके लिए सेवाव्रत ग्रहण कर रही हो । कमला, तुम जानती नहीं हो, भगवती अन्नपूर्णाकी यथार्थ उपासिका तुम ही हो। इस लिए ही देवी तुम्हें अपना कार्य-भार सौंप गई थीं। आज केवल तुम्हारी ही उपासनासे, तुम्हारे ही पुण्यप्रतापसे, देवी आई।

कमला—

तो तुम्हें विश्वास नहीं है कि मैंने मंदिर छोड़नेके बाद अनेक पाप किये हैं?

माताजी—

तुमने क्षणभरके लिए भी मंदिर नहीं छोड़ा है । तुम आज बीस वर्षोंसे इस मंदिरमें परिचारिका होकर रहती हो । मैंने तुम्हें उपासना और परिचर्याके कामोंमें सर्वदा संलग्न देखा है। मैं कह सकती हूँ, तुम्हारे समान पवित्र जीवन किसीका नहीं है। तुम सर्वथा निष्पाप हो। तुम मंदिरके बाहर कभी नहीं गई हो।

कमला—

मैं कभी मंदिरके बाहर नहीं गई थी ? मैं कुछ सोच नहीं सकती हूँ। देखो, मैं मृत्यु-शय्यापर पड़ी हूँ। यह मेरा अंतिम काल है। मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, तुम मुझे सच कह दो। क्या तुम जानकर भी दयाभावसे ऐसा कहती हो जिससे मुझे मृत्यु-कालमें कुछ कष्ट न हो ? अथवा क्या तुम मुझे ऐसी दशामें देखकर क्षमा कर रही हो ?

माताजी—

वत्से, मैं तुम्हें क्या क्षमा करूँगी। तुम स्वयं निर्दोष हो। मैं सच कहती हूँ, तुमने कोई पाप नहीं किया है। मैंने तुमको मंदिरमें ही देखा है।

कमला—

माताजी, मैं यहाँ हूँ। मैं समझती हूँ कि मैं स्वप्न नहीं देख रही हूँ। इसलिए मैं फिर पूछती हूँ। तुम मुझे कृपाकर उत्तर दो। क्या तुम्हें स्मरण नहीं है कि आज बीस वर्ष पहले तुमने देखा था कि मंदिरका द्वार खुला हुआ है, मैं चली गई हूँ और मेरा यह परि-धान-वस्त्र और अवगुण्ठन देवीके सिंहासनके नीचे, पड़ा हुआ है। क्या तुम्हें उस दिनकी थोड़ी भी सुधि नहीं है ? माताजी, खूब विचार-कर मुझे उत्तर दो।

माताजी—

वत्से, इसमें संदेह नहीं है, तुम उस दिनका ही स्मरण कर इतनी विमूढ़ सी हो रही हो। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

उस दिन हम लोगोंकी भी ऐसी ही दशा हो गई थी। देवी हम लोगोंको छोड़कर चली गई थीं, किन्तु जानेके पूर्व ही तुम्हें अपने वस्त्र और अलंकारोंसे सज्जित कर अपना कार्यभार दे गई थीं। दूसरे दिन हम लोगोंने देवीकी महिमाको न समझकर तुमको दण्ड देनेके लिए कारागारमें रक्खा। पर तुम्हारे जाते ही कारागारका अंधकार दूर हो गया, वहाँ एक दिव्य प्रकाश फैल गया, गन्धर्वगण तुम्हारी स्तुति करने लगे और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। वह दिन हममेंसे कोई नहीं भूलेगी। उस दिनसे तुमने देवीका स्थान ग्रहण किया है।

कमला—

और मेरा स्थान किसने लिया?

माताजी—

किसीने नहीं। तुम स्वयं यहाँ थीं और अपना सब काम करती थीं।

कमला—

मैं यहाँ थी? प्रतिदिन तुम्हारे साथ रहती थी? तुम मुझे देखती थीं, स्पर्श करती थीं? माताजी, क्या सचमुच तुम मुझे प्रति दिन देखती थीं?

माताजी—

वत्से, विश्वास करो। हम तुम्हें सदा यहाँ देखती थीं।

कमला—

मैं कुछ नहीं जानती हूँ, कुछ नहीं समझ सकती हूँ। (देवीकी ओर देखकर) देवि, मैं तुमसे पूछती हूँ, यह कैसे हुआ? क्या तुमने

जान लिया, मुझे कितनी वेदना थी ! मैं समझती थी—मैं कुछ नहीं समझती थी !—मैं अपने कष्टके समय कहा करती थी यदि तुम जान लोगी मुझे कितना कष्ट हो रहा है तो अवश्य ही क्षमा कर दोगी। किसी समयमें लोग पापियोंकी वेदनाओंसे सहानुभूति प्रकट नहीं करते थे, उनसे घृणा करते थे, उन्हें दण्ड देते थे। किन्तु आज प्रेमका विजय-दिवस है। सर्वत्र दया-भाव है, सर्वत्र शांति है। माताजी, मेरी बहिन-परिचारिकाओ, मैं कहती हूँ—पर अब बोलनेकी शक्ति क्षीण होती जाती है। मेरी दृष्टि भी मलिन हो गई है। कण्ठ अवरुद्ध हो रहा है। मैं अब जा रही हूँ। इस संसारमें मैं जब तक थी तब तक नहीं जान सकी कि यहाँ इतनी घृणाका भाव मनुष्योंमें क्यों है? जहाँ जाती हूँ वहाँ देखूँगी कि प्रेम और दयाका इतना आधिक्य क्यों है। मैं जाती—आती हूँ—मा !

(कमलाकी मृत्यु)

माताजी—

वह अनन्त निद्रामें है।

सुकेशी—

वह देवीकी गोदमें विश्राम ले रही है।

उन्मुक्तिका बन्धन

उन्मुक्तिका बन्धन

प्रथम दृश्य

स्थान—अयोध्याका राजपथ

(प्रातःकाल हो गया है । राजपथकी दोनों ओर नगरके सब अधिवासी एकत्र हो गये हैं । सब बड़े उत्सुक हैं । सब लोगोंकी दृष्टि पूर्वकी ओर है । कुछ राजपुरुष राजपथपर इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं ।)

१ राजपुरुष—

प्रातःकाल हो गया । राज-वधूका अभी तक आगमन नहीं हुआ ।

२ राजपुरुष—

राजा भी राज-भवनमें बड़ी उत्सुकतासे देख रहे हैं ।

१ राजपुरुष—

हम लोग कुछ आगे बढ़ कर देख आवें ।

२ राजपुरुष—

चलो । (दोनों जाते हैं)

१ नागरिक—

देखते हो माधव, कैसी भीड़ है ?

२ नागरिक (माधव)—

हाँ, मोहन दादा । पर राजा तो अभी तक नहीं आये ।

३ नागरिक (गोपाल)-

राजा तो आ गये हैं, अपने राज-भवनमें राज-लक्ष्मीके आगमन-की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

२ नागरिक (माधव)-

दादा, इसकी बात तो सुनो। वर-वधू साथ ही आते हैं। राजा पहले कैसे आवेंगे, राज-वधूके साथ ही आवेंगे।

१ नागरिक (मोहन)-

चुप। सुनो, ये दो राजपुरुष क्या कर रहे हैं।

(दो राजपुरुषोंका प्रवेश)

१ राजपुरुष—

लोगोंमें बड़ी उत्तेजना फैल रही है। इसका परिणाम बुरा होगा।

२ राजपुरुष—

राजाको जाकर खबर दूँ?

१ राजपुरुष—

कुछ लाभ नहीं। पूर्वपरिणीता राज-वधुओंके विषयमें राजा कुछ कहते ही नहीं और सब लोग जानना यही चाहते हैं।

२ राजपुरुष—

नगरके लोग क्या राजाके नव-विवाहसे सन्तुष्ट नहीं हैं?

१ राजपुरुष—

नहीं, यह राज-वधू तो साक्षात् राज-लक्ष्मी है। नाम अपराजिता है। पर यह राजाका पाँचवाँ विवाह है। इसके पहले सात महीनेमें राजाने चार विवाह किये। पर उन चारों राज-कन्याओंका क्या हुआ, कोई नहीं जानता।

२ राजपुरुष—

यह कैसी बात है।

१ राजपुरुष—

भगवान् जाने। मुझे भय है, कहीं राज-वधूके रथको लोग रोक न लें। देखो, राजमन्त्री भी आ रहे हैं। हम लोग चलें।

(दोनोंका प्रस्थान)

माधव—

बात क्या है, मोहन दादा, तुम कुछ जानते हो?

मोहन—

तुम नहीं जानते? तुमने कुछ नहीं सुना?

माधव—

नहीं, मैंने तो कुछ सुना ही नहीं।

गोपाल—

चुप, यह देख राज-वधूका रथ आ रहा है।

[रथ आता है। उसमें राजकन्या अपराजिता बैठी है, साथमें एक दासी भी है। रथके पीछे नागरिकोंका एक दल आ रहा है। रथ जब राज-भवनके द्वारपर पहुँचता है तब सब नागरिक चारों ओर घेरकर खड़े हो जाते हैं।]

१ नागरिक—

हमारी एक प्रार्थना राज-वधूको स्वीकार करनी होगी।

अपराजिता—(रथसे बाहर होकर)

कैसी प्रार्थना?

१ नागरिक—

प्रतिदिन आपको अपने गवाक्षसे हम लोगोंको दर्शन देना पड़ेगा।

अपराजिता—

मैं स्वीकार करती हूँ।

नागरिकोंका दल—

राज-वधूकी जय।

(सब नागरिक धीरे धीरे चले जाते हैं।)

[राजाका प्रवेश]

राजा—

प्रिये, अपराजिते, आओ। आज सारा राज-भवन तुम्हारा स्वागत करनेके लिए उल्लसित हो उठा है। जैसे सूर्य-प्रभाके आते ही वायुदेव उसे पुष्प-पराग अर्पण कर देता है, वैसे ही आज मैं तुम्हें अपना समस्त ऐश्वर्य भेंट करता हूँ। पर तुम गंभीर कैसे हो गई हो?

अपराजिता—

नहीं, नाथ, मैं आपका विभव देख कुछ चकित हो गई हूँ।

राजा—

प्रिये, अभी तुमने कुछ नहीं देखा है। इस राज-भवनमें चार कक्ष हैं। वहाँ क्या है, यह मैं नहीं कहूँगा। तुम स्वयं देख लेना। पर पाँचवें कक्षमें भूलकर भी पैर मत रखना। वहाँ जाते ही हम दोनोंमें अनन्त विच्छेद होगा। इस लिए वहाँ जानेकी इच्छा मत करना। मैं तुम्हें पहलेसे ही सावधान किये देता हूँ। अच्छा, मैं अब जाता हूँ। (राजाका प्रस्थान)

अपराजिता—

विमला,

विमला (दासी)—

देवि,

अपराजिता—

तुमने सुन लिया ?

विमला—

देवि, मैंने सब सुना। किसी अज्ञात भयकी आशंकासे मेरा हृदय काँप रहा है। तुम यहाँ मत ठहरो। मेरा यही अनुरोध है।

अपराजिता—

नहीं, विमला, अभी तो भयकी कोई बात नहीं है। यदि तुमने विश्राम ले लिया हो तो आओ मैं एक बार इस राज-भवनको देख लूँ। उन चारों कक्षोंको भी देख आऊँ जिसकी राजा इतनी प्रशंसा कर गये हैं।

विमला—

जैसी आज्ञा।

(दोनों जाती हैं)

[मोहन, माधव और गोपालका प्रवेश]

माधव—

दादा, सच कहो, बात क्या है ?

मोहन—

तुम नहीं समझ सकते ? देखो, एक राजा है। उसका राज-भवन है। उसमें इतने दास-दासियाँ हैं। राजाका विवाह हुआ। एक बार नहीं, चार बार। एक-एक कर चार राजकन्यायें आईं। पर राज-भवनमें कोई नहीं है। यह कैसी बात है ?

माधव—

हाँ, यह कैसी बात है ?

मोहन—

तुम समझते नहीं ? यदि उनकी मृत्यु हो गई—और एकके बाद एक चारों राज-कन्याओंकी मृत्यु हो जाना, यह भी एक अचरजकी बात है।

माधव—

हाँ, अचरज है, चारों राज-कन्यायें नहीं मर सकती हैं। तो क्या वे अभीतक जीवित हैं ?

मोहन—

पहले मेरी बात सुन। कहा जाता है, उनकी मृत्यु हो गई। यदि उनकी मृत्यु हो गई तो उनका अन्तिम संस्कार क्यों नहीं किया गया ? उनके मृत शरीर कहाँ गये ?

माधव—

हाँ, दादा, ठीक तो कहते हो, उसका क्या कारण होगा ?

मोहन—

कौन जाने, कदाचित् राजाने स्वयं उनकी हत्या की हो तो ? और हत्या कर उनके मृत शरीरोंको छिपा रखा हो तो ?

माधव—

क्या कहते हो ! राजाने स्वयं हत्या की है ?

गोपाल—

हम लोगोंका राजा इतना क्रूर इतना नृशंस—

माधव—

ऐसा हत्याकाण्ड हो रहा है, हम लोग कुछ नहीं जानते ।

गोपाल—

अभागिनी राज-कन्या, इसकी भी हत्या होगी ।

मोहन—

चुप, चुप । इतना उत्तेजित मत हो । राज-वधू गवाक्षसे कदाचित् हम लोगोंकी ओर देख रही हैं ।

गोपाल (धीरेसे)

चलो, हम लोग यहाँ न ठहरें ।

(सब लोगोंका प्रस्थान)

[विमलाके साथ राजकन्याका प्रवेश]

अपराजिता—

विमला,

विमला—

देवि,

अपराजिता—

सुनती है, ये लोग क्या कह रहे थे ?

विमला—

देवि, यह सम्भव नहीं है ।

अपराजिता—

देखूँगी । अच्छा अब चलो । (प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—राज-भवन

(राज-वधू अपराजिता अपनी विमला दासीके साथ आती हैं। उनके मुखसे दृढ़ता प्रकट होती है। विमला कुछ भयभीत सी जान पड़ती है।)

अपराजिता—

खोलूँ, यह प्रथम कक्ष है। खोलती हूँ।

[दोनों द्वार खोलकर भीतर जाती हैं। पहले तो कुछ भी नहीं जान पड़ता। फिर क्षणभरमें ऐसा ज्ञात होता है कि मानो निर्मल जल-कणोंकी वर्षा हो रही हो। दोनों समीप जाकर देखती हैं तो सम्पूर्ण कक्ष मोतियोंसे ढँक गया है।]

अपराजिता—

देख, देख, विमला, ये सब मोती हैं। मोतियोंकी ऐसी वर्षा तुमने कभी स्वप्नमें भी देखी थी?

विमला—

देवि, मैं तो अवाक् हो गई हूँ। कुछ कह नहीं सकती।

अपराजिता—

यह तो पहला ही कक्ष है। उसकी तो ऐसी विचित्रता। अच्छा, चलूँ, दूसरे कमरेमें चलकर देखूँ, वहाँ क्या है?

(दोनों जाती हैं।)

विमला—

देवि, यह दूसरा कक्ष है!

अपराजिता—

देखूँ, हाँ, यह दूसरा कक्ष है। इसका नाम है गगन-मंडल। नाम विचित्र है। देखें, इसकी कैसी शोभा है।

[दोनों द्वार खोल-कर भीतर जाती हैं।]

अपराजिता—

देख, देख, विमला। यह तो आकाश है, स्वच्छ, निर्मल, सुप्रभ, आकाश है। तारागण भी हैं। इन ताराओंको तो देख। नीले, पीले, हरे, लाल और श्वेत ताराओंसे आकाशकी कैसी शोभा हो रही है। यहाँ ताराओंका कितना वर्ण-वैचित्र्य है। विमला, हम लोग किस लोकमें हैं?

विमला—

कुमारी, यह आकाश नहीं है, यह तो कमरेका छत है। ये तारे भी नहीं, मणि हैं। सचमुच राजाका ऐश्वर्य अतुलनीय है।

राज-कन्या—

अच्छा, अब तीसरे कमरेमें चलकर देखें।

(दोनों बाहर आती हैं।)

विमला—

कुमारी, यह तृतीय कक्ष है।

अपराजिता—

इसका नाम है अग्निशिखा, खोल तो सही।

[द्वार खोलते ही दोनों एक देदीप्यमान ज्योति देखकर विस्मय-विमुग्ध हो जाती हैं।]

अपराजिता—

यहाँ केवल रक्त-मणियोंका संग्रह किया गया है। कैसी शोभा है! अग्निकी उद्दीप्त शिखाकी भाँति इन मणियोंसे आभा निकल रही है। सहसा इनपर दृष्टि भी नहीं पड़ती। चल, मैं यहाँ ठहर भी नहीं सकती। अब दूसरे कमरेको देख आवें।

(बाहर निकल आती हैं।)

विमला—

कुमारी, चतुर्थ कक्ष इधर है। इधर आइए।

(दोनों द्वार खोलकर भीतर जाती हैं।)

विमला—

कुमारी, यहाँ तड़ाग बना हुआ है। कैसा मनोहर है! तालाबमें कमलके फूल भी खिले हुए हैं। और ये पक्षी—इन्हें तो देखिए। ऐसा जान पड़ता है कि अब ये उड़ना ही चाहते हैं।

अपराजिता—

सचमुच यह बड़ा रमणीय है। अग्निशिखाके बाद इन्हें देख कर आँखें ठंडी हो गईं। अब पाँचवें कमरेमें क्या होगा? उसे भी देख लेना चाहिए।

विमला—

कुमारी, राजाने क्या कहा था, भूल गईं?

अपराजिता—

पर राजा जान नहीं सकेंगे। दूरसे एक बार देखकर मैं लौट आऊँगी।

विमला—

नहीं, राजकुमारी, मेरी प्रार्थना है आप ऐसी इच्छा मत करिए। न जाने, उसका परिणाम क्या हो।

अपराजिता—

सच तो यह है, मैं यह देखना चाहती हूँ कि राजाने क्या समझकर निषेध किया है।

विमला—

देवि, दुराग्रहका फल अच्छा नहीं होता।

अपराजिता—

विमला, किसी भयकी आशंका मत कर। आ। मैं द्वार खोलती हूँ।

[विमला भी अपराजिताके साथ जाती है। अपराजिता द्वार खोलती है। पर द्वार पहले खुलता ही नहीं। तव अपराजिता उसके कपाटोंको धक्का देती है। धक्का देते ही द्वार सहसा खुल जाते हैं। दोनों-को ऐसा जान पड़ता है कि मानों वे अनन्त अन्धकार-राशिमें फेंक दी गई हो। अन्धकार पल पलमें बढ़तासा जान पड़ता था। विमला भयभीत हो द्वारको मुद्रित करनेका प्रयत्न करती है। पर द्वार मुद्रित होते ही नहीं। सहसा उस अन्धकार-राशिमेंसे गान-ध्वनि सुनाई पड़ती है। पहले वह ध्वनि अत्यंत क्षीण रहती है। पर क्रमशः वह तीव्र होती जाती है। अन्तमें वह ध्वनि समस्त राजभवनमें फैल जाती है। दोनों चकित-चित्त हो उसे सुनती हैं।)

गान—

अन्धकार।

अब हुआ जगतमें तम-प्रसार।
जीवनकी ज्योति मलीन हुई,
अति दीन हुई, अति क्षीण हुई।
दारुण चिन्तामें लीन हुई,
मैं खड़ी हुई करती विचार।

अन्धकार।

जब जीवनका था उषःकाल,
था तब मायाका स्वप्नजाल।

सुधि थी किसको, ऐसा कराल,
होगा अन्तिम तेरा प्रहार।
अन्धकार।
मैं व्यथित हुई करती विलाप,
किसका ऐसा था घोर शाप ?
अथवा है क्या यह पाप-ताप,
तमका होगा अब कब सँहार ?
अन्धकार।
पर आया ज्यों ही निशाकाल,
खिल उठा ज्योतिसे नभ विशाल।
भय दूर हुआ। यह खूब चाल
खेली, तेरी करुणा अपार।
अन्धकार।

[राजाका सहसा प्रवेश]

राजा--

प्रिये, तुमने यह क्या किया ?

अपराजिता--

जो कुछ किया, अच्छा ही किया।

राजा--

इस अन्धकारमें अब तुम्हें सदा रहना पड़ेगा।

अपराजिता--

आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

राजा--

प्रिये, तुममें थोड़ा भी धैर्य नहीं था। तुम्हें आये अभी दो घंटे भी नहीं हुए। इतनेमें ही तुम्हे अन्धकूपमें जानेकी इच्छा हो गई।

मेरे राज-भवनमें ऐसी वस्तुओंका अभाव नहीं है जो तुम्हारा मनोरंजन कर सकें। फिर यहाँ आनेकी कैसी इच्छा हुई?

अपराजिता—

महाराज, मुझे यह अन्धकार ही सुखप्रद है। मैं अब जाती हूँ।

(प्रस्थान)

राजा—

यह क्या हुआ? अपराजिते, तुम भी चली गईं नहीं, नहीं, मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा। मैं अपने बाहुबलसे तुम्हें रोक लूँगा। अपराजिते, प्रिये, तुम कहाँ हो।

(अन्धकारमेंसे क्षीणस्वरसे उत्तर मिलता है—'विदा')

विमला—

महाराज, अब आप व्यर्थ यहाँ मत ठहरें।

राजा—

देख, विमला, यह अन्धकूप अपराजिताको पाकर सन्तुष्ट हो गया। इसका द्वार अब आपसे आप बन्द हो रहा है।

विमला—

महाराज, क्या अब इस कारागारसे उन्मुक्ति नहीं होगी?

राजा—

कभी नहीं, कदापि नहीं। तुम्हारी राजकन्याके पहले मैंने चार राज-कन्याओंसे विवाह किया था। वे सब इसी प्रकार इस अन्धकूपमें जाकर विलीन हो गईं। चलो, अब चलें।

(प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान—अन्धकारमय कारागार

(अन्धकार और प्रकाशका ऐसा विलक्षण सम्मिश्रण है कि कुछ स्पष्ट है और कुछ अस्पष्ट है ।)

[अपराजिताका प्रवेश]

अपराजिता—

कब तक मैं यों ही चलती रहूँगी । इसका तो अन्त ही नहीं है । कुछ समझ नहीं पड़ता । यह कैसा अन्धकार है । आगे बढ़ रही हूँ, क्योंकि मुझे आगे बढ़ना ही पड़ता है ! यह देखो, फिर गान होने लगा, सुन लूँ । (सुनती हूँ ।)

गान—

अब, सखि, यहाँ करो विश्राम ।
हुआ आजसे अन्धकार यह, बहिन तुम्हारा धाम ।
भले बुरेका ज्ञान न होगा, यहाँ सभी हैं एक ।
अपने और परायेका भी होगा नहीं विवेक ।
रूप रंगका भेद नहीं है, सब हैं एक समान ।
रूप गुणोंका यहाँ छोड़ना पड़ता है अभिमान ।
जगकी ज्योति बढ़ा देती है केवल मनकी दाह ।
हे घनश्याम, तुम्हे पाकर अब नहीं किसीकी चाह ।

अपराजिता—

और आगे बढ़ूँ । यहाँ ठहर जाऊँ । अरे, यहाँ तो कुछ लोग बातचीत कर रहे हैं ।

अलक्षित स्वर—

बहिन, सच कहो तुम्हें क्या किसीकी चाह नहीं है ?

सुभद्रे, सुनती हो सुकेशी क्या कह रही है ?

तो क्या पूछनेमें कुछ दोष है, प्रियम्वदा ?

मैं तो कहती हूँ, दोष है ।

और मैं कहती हूँ दोष नहीं है ।

अच्छा, इस विवादका निर्णय कैसे हो ?

चलो, मनोरमासे पूछें ।

मनोरमे, तुम कहाँ हो ?

चुप, मैं यहीं तो खड़ी हूँ ।

क्या बात है ? तुम चुप कैसी हो ?

मैं किसीका पद-शब्द सुन रही हूँ । कोई आ रहा है ।

(सब चुप हो जाती हैं ।)

अपराजिता—

यहीं तो हैं । चारों हैं—सुभद्रा, सुकेशी, प्रियम्वदा और मनोरमा । मै भी जाऊँ । अब आगे बढ़ूँ ।

(आगे बढ़ती है ।)

अलक्षित स्वर—

देख, फिर पद-शब्द सुनाई दिया ।

मैं भी सुन रही ँ ।

मैं पुकार कर कहती हूँ । (कुछ ज़ोरसे) यह किसका पद-शब्द सुनाई दे रहा है ?

अपराजिता—

मैं हूँ अपराजिता। तुम सब कहाँ हो?

अलक्षित स्वर—

हम सब इधर हैं।

अपराजिता— (एकका देह स्पर्श कर)

तुम कौन हो?

अलक्षित स्वर—

मैं सुभद्रा हूँ।

अपराजिता— (दूसरेको स्पर्श कर)

और तुम, बहिन?

अलक्षित स्वर—

मैं प्रियम्वदा ँ।

अपराजिता—

और यह?

अलक्षित स्वर—

मैं मनोरमा हूँ—

अपराजिता—

और सुकेशी कहाँ है?

अलक्षित स्वर—

मैं यहाँ हूँ, बहिन।

अपराजिता—

बहिन, सुभद्रा, इस अन्ध कारागारमें सबसे पहले कौन आई थी?

सुभद्रा—

सबसे पहले मनोरमा आई। उसके बाद प्रियम्वदा, फिर मैं, फिर सुकेशी और अब तुम आई हो।

अपराजिता—

राजाका हृदय कैसा कठोर है! तुम ऐसी राज-कन्याओंको उसने यों अन्धकारमें फेंक दिया!

मनोरमा—

बहिन, इस अन्धकारमें तो हम लोग इच्छासे ही आई हैं।

अपराजिता—

छिः, अन्धकार भी क्या रहनेकी जगह है?

प्रियम्वदा—

कैसे कहें बहिन। भाग्यमें ही ऐसा था।

अपराजिता—

राजाने मुझे लौटानेका प्रयत्न किया। पर मैं नहीं लौटी। बहिनो, मैं तुम्हें इस कारागारसे मुक्त करूँगी।

मनोरमा—

यह क्या सम्भव है?

अपराजिता—

मैं असंभवको भी संभव करूँगी। तुम सबकी क्या इच्छा है?

प्रियम्वदा—

इस अन्धकूपसे कौन नहीं छूटना चाहेगा!

मनोरमा—

पर इस अन्धकारमें तो पथ ही नहीं सूझ पड़ता।

सुकेशी—

उन्मुक्तिके लिए व्यर्थ प्रयास करनेसे कोई लाभ नहीं है, अपराजिता। तुम भी अन्धकारमें ही रहो।

अपराजिता—

बहिन, यह ऊपर क्या है, उससे तो कुछ ज्योतिसी आ रही है।

प्रियम्वदा—

मैं नहीं जानती। पर अपराजिता, तुम यहाँ ज्योतिकी आशा मत करो।

अपराजिता—

अच्छा, मैं आगे आगे चलती हूँ, तुम सब पीछे पीछे आओ। देखूँ, कितना बड़ा और कितना दृढ यह कारागार है।

(सब जाती हैं)

अपराजिता (स्पर्श कर)—

यह क्या है? भीत है। अब कारागारकी यह अन्तिम सीमा है। देखो, बहिन, ऊपर कुछ ज्योतिसी आ रही है। बहिन मनोरमा, तुम मुझे थोड़ा सहारा दो। मैं चढ़ती हूँ।

प्रियम्वदा—

अपराजिता, सहारा लेनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं चढ़ गई। तुम्हारे बायें हाथकी ओर सीढ़ी है। तुम सब चढ़ आओ। यहाँ बैठनेकी जगह है।

(सब ऊपर चढ़ती हैं।)

अपराजिता—

यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है ?

प्रियम्वदा—

गंभीर नाद हो रहा है ।

सुकेशी—

मुझे जान पड़ता है मानों यह गंभीर शब्द समुद्र-कल्लोलोंसे उठ रहा है ।

मनोरमा—

सुकेशी ठीक कह रही है, यह समुद्रका भीषण गर्जन है। चलो, हम लोग उतर पड़ें । मुझे भय लगता है ।

अपराजिता—

मैं इसे तोड़कर देखती हूँ, यह किसका शब्द हो रहा है ।

मनोरमा—

बहिन, ऐसा मत करो, नहीं तो हम सब समुद्रकी भीषण तरंगोंमें पड़कर नष्ट हो जावेंगी। यह अन्धकार ही हम लोगोंके लिए श्रेयस्कर है ।

चतुर्थ दृश्य

स्थान—राज-पथ

(मध्याह्न काल है। राज-पथकी दोनों ओर बड़ी भीड़ है। राज-भवनके पास सैनिकगण अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित खड़े हैं।)

एक नागरिक—

हम लोग बिना राज-वधूका दर्शन किये नहीं हटेंगे।

२ नागरिक—

राज-वधूने हमे दर्शन देनेकी प्रतिज्ञा की है।

३ नागरिक—

ये सैनिक हमें रोक क्यों रहे हैं ?

(माधव, गोपाल और मोहन)

माधव—

देखो, दादा, फिर लोग उत्तेजित हो गये हैं।

मोहन—

यह हत्याकाण्ड न जाने कब बन्द होगा।

गोपाल—

तो राज-वधूकी सचमुच हत्या हो गई ?

१ नागरिक—

क्या कहा ? राज-वधूकी हत्या हुई है ?

२ नागरिक—

कैसी भयानक बात है।

२ नागरिक—

कहाँ है हम लोगोंकी राज-वधू ?

(सब लोगोंमें बड़ी उत्तेजना फैल गई । सब सैनिकोंको हटाकर राज-भवनमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करने लगे)

[राजमन्त्रीका प्रवेश]

राजमन्त्री—

यह कैसा कोलाहल है ?

१ नागरिक—

हमारी राज-लक्ष्मी कहाँ है ?

राजमन्त्री—

तुम उन्हें नहीं देख सकते ।

१ नागरिक—

हम अवश्य देखेंगे । हमने सुना है कि उनकी हत्या की गई है ।

राजमन्त्री—

असम्भव, झूठ ।

१ नागरिक—

हम बिना देखे जावेंगे नहीं ।

[राजाका प्रवेश]

राजा—

कोई नहीं देख सकता । सैनिको, इन्हे मार भगाओ ।

पञ्चम दृश्य

स्थान—अन्धकूप

अपराजिता—

बहिन, मैं इसे तोड़ती हूँ।

सुकेशी—

सुनो, वह कलकल शब्द हो रहा है।

अपराजिता—

बहिन, कुछ भयकी आशंका मत करो।

मनोरमा—

मैं कहती हूँ, अपराजिता, तुम हठ मत करो। यहाँसे उद्धार पानेकी कुछ आशा है नहीं। तुम्हारे प्रयाससे हमें अपने प्राणों-की आशंका है।

अपराजिता—

मैं तोड़ती हूँ। यह पत्थर भी पास ही है।

(पत्थर लेकर मारती है। कुछ नहीं होता। वार वार मारनेसे वह भाग टूट जाता है और एकदम एक नीला प्रकाश दिखाई देता है।]

सुकेशी—(आँखें मूँदकर)

यह क्या है ?

मनोरमा—

समुद्रका नीलवर्ण। अब मरे। हाय, अपराजिता, यह तुमने क्या किया ?

अपराजिता—(हँसकर

सखियो, बहिनो, आँखें खोलो। यह समुद्र नहीं, नीलाकाश है। यह मृत्यु नहीं, उन्मुक्ति है। देखो, कैसा शीतल पवन बह रहा है।

सुकेशी—

कहाँ ? सच ? मनोरमा, आँखें खोलो। मैं तुम्हें देख रही हूँ।

[सब आँखें खोलती हैं और क्षणभर एक दूसरेकी ओर चकित होकर देखती हैं। पर सब एक दूसरेको पहचान नहीं सकतीं।]

मनोरमा—(अपराजिताकी ओर)

तुम सुकेशी हो ?

अपराजिता—(हँसकर)

अब भूल मत करो। अब अन्धकार नहीं है। मैं अपराजिता हूँ।

सुकेशी—

मैं सुकेशी हूँ।

प्रियंवदा—

मैं प्रियंवदा हूँ।

सुभद्रा—

मैं सुभद्रा हूँ।

मनोरमा—

कैसे अचरजकी बात है। इतने दिनों तक हम एक दूसरेके साथ रहीं पर पहचान नहीं सकीं।

प्रियंवदा—

अन्धकारका नाश होनेपर पहले ऐसा ही होता ।

अपराजिता—

चलो, अब बाहर चलें। यह तो खिड़की है।

(सब बाहर आती हैं।)

प्रियंवदा—

उन्मुक्ति, स्वतन्त्रता।

सुभद्रा—

अब अन्धकारका भय नहीं है।

मनोरमा—

कारागारका बन्धन नहीं।

अपराजिता—

यह देखो, हम लोग तो राजभवनके द्वारपर आ गये। यह क्या? यहाँ तो खूब युद्ध हो रहा है।

सुकेशी—

वह देखो। वही हमारे राजा हैं। कैसी वीरतासे लड़ रहे हैं।

[युद्ध करते हुए नागरिक, सैनिक और राजाका प्रवेश]

१ नागरिक—

वीरो, हमें अपनी राज-लक्ष्मीका बदला लेना है। पैर पीछे मत देना। आगे बढ़ो। इस द्वारको ले लो।

(नागरिकोंका द्वारपर आक्रमण)

अपराजिता—

बहिन, यह तो हम लोगोंके कारण युद्ध हो रहा है। हम लोग आगे बढ़ें।—

(सब आगे बढ़कर सामने आती हैं। उन्हें देखकर सब नागरिक हर्षसे जयध्वनि करने लगते हैं।)

१ नागरिक (अपराजितासे)—

देवि, अभी तक आप कहाँ थीं।

अपराजिता—

मैं अभी तक अपनी इन बहिनोंके साथ राजाके अन्ध कूपमें बन्द थी। राजाने इनको भी अपने कारागारमें बन्द कर रखा था।

१ नागरिक (राजाकी ओर प्रहार करता है)—

नृशंस, यह ले।

(राजाका पतन)

सुकेशी—

देखो, हमारे अधीश्वर मूर्च्छित हो गिर पड़े।

(सब राजाके पास शीघ्रताके साथ जाती हैं और उनकी सेवामें लग जाती हैं।

अपराजिता—(राजाके सिरको गोदमें लेकर)

अच्छा, तुम लोग जाओ, हम राजाको चैतन्य कर लेंगी।

१ नागरिक—

पर यदि राजा चैतन्य हो फिर आपपर अत्याचार करे?

अपराजिता—

तुम इसकी आशंका मत करो।

१ नागरिक—

अच्छा, मैं सिर्फ पाँच मनुष्योंके साथ आपकी रक्षाके लिए रहता हूँ, और सबको विदा कर देता हूँ।

अपराजिता—

जैसी तुम्हारी इच्छा।

(६ नागरिकोंको छोड़ सब चले जाते हैं।)

(राजाकी मूर्च्छा भंग होती है और वह इन राजकुमारियोंकी ओर चुपचाप देखता है)

अपराजिता—

बहिनो, राजाका अमान्य शासन भंग हो गया। हमें स्वतंत्रता मिल गई। अब हम यहाँ क्यों ठहरें? चलो।

सुकेशी—

मैं राजाको छोड़ कर नहीं जा सकती।

अपराजिता—

तुम्हे पुनः उसके बन्धनमें रहना होगा।

सुकेशी—

मुझे यह स्वीकार है।

अपराजिता—

मनोरमा?

मनोरमा—

बहिन, मैं भी रहूँगी।

अपराजिता—(सुभद्राकी ओर)

और तुम?

सुभद्रा—

मुझे भी राजाका बन्धन स्वीकृत है।

अपराजिता—

बहिन प्रियवंदा, तुम तो चलोगी ?

प्रियवंदा—

नहीं, मैं भी राजाके साथ रहूँगी—

अपराजिता—

यह तुम्हारी उन्मुक्तिका बन्धन है । भगवान् तुम्हारा कल्याण करें । पर मैं जाती हूँ । अब किसीको मेरी आवश्यकता नहीं है ।

(अपराजिता जाती है । सब उसकी ओर देखती रहती हैं ।)